स्वाधीन भारत ।



महात्मा गाँधी ।

स्वाधीन भारत।

हिन्दी-गौरव-ग्रंथमालाका २१ वाँ ग्रंथ ।

स्वाधीन भारत

[महात्मा गाँधीकी ' इण्डियन होमरूल ' नामक अँगरेजी पुस्तकका अनुवाद ।]



अनुवादक,
पं० छविनाथ पाण्डेय, बी० ए० एल एल० बी०



प्रकाशक,
गाँधी हिन्दी-पुस्तक भंडार,
कालवादेवी—बम्बई ।



प्रथम संस्करण ।



मूल्य बारह आने ।



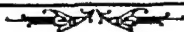
पौष १९७७



प्रकाशक—
उदयलाल काशलीवाल,
गाँधी हिन्दी-पुस्तक भंडार;
कालबादेवी—बम्बई ।

* * * *

मुद्रक,
चिंतामण सखाराम देवळे,
'मुंबई-वैभव प्रेस,' सर्व्हेंट्स् आफ इंडिया
सोसायटीज् होम, सँढर्स्ट रोड,
गिरगाँव—बम्बई ।



दरिद्र भारतके अभ्युदयार्थ ।

विषय।

स्वाधीन भारत।

पहला परिच्छेद।

राष्ट्रीय सभा (कांग्रेस) तथा उसके व्यवस्थापक।

पाठक—आजकल सारे भारतमें स्वराज्यकी हवा बह रही है। जहाँ देखिए वहीं स्वराज्यकी चर्चा है। प्रायः सारी भारतीय जनता स्वतन्त्रताके लिये दीवानी हो रही है। अफ्रीकामें जो भारतवासी चले गये हैं उनको भी यही धुन सवार है। इस समय भारतमें जागृति हो रही है और सब लोग अपने अधिकारोंके लिए लोलुप हो रहे हैं। कहिए इस विषयमें आपकी क्या राय है।

सम्पादक—आपने प्रश्न तो खूब किया है, पर उसका उत्तर देना सहज नहीं है। सम्पादकोंका पहला तथा सबसे

बड़ा काम जनताके भावोंको समझना तथा उनका प्रचार करना है। दूसरे उनमें कुछ नई आवश्यक बातोंकी जागृति कराना है; और तीसरे निडर होकर समाजके दोषोंको दिखलाना है। आपका प्रश्न इन तीनों विषयोंसे भरा है। तब उत्तर देनेके पहले मुझे यह सोच लेना आवश्यक है कि इन तीनोंका उत्तर समयानुकूल कहाँ तक दिया जा सकता है। जनताका मत कुछ न कुछ प्रकट किया जा सकता है, उसमें थोड़ी बहुत जागृति भी डाली जा सकती है और किसी किसी विषयकी आलोचना भी की जा सकती है। पर तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देना तो आवश्यक है।

पाठक—तो क्या आप यह कहते हैं कि स्वराज्य शब्द हम लोगोंको सिखाया गया है।

सम्पा०—स्वराज्यकी आकांक्षाहीने तो जातीय सभाको निर्माण कराया। जातीय शब्दसे सिवा स्वराज्यके और किस अर्थका बोध हो सकता है।

पाठक—पर यह बात वास्तवमें प्रतीत नहीं होती। कमसे कम बीसवीं शताब्दीका भारत तो यह नहीं बतलाता। अब कांग्रेसकी परवा ही कौन करता है। अब तो लोग उसे घृणाकी

दृष्टिसे देखते हैं । कितनोंको तो यह भी विश्वास होने लगा है कि यह नौकरशाहीकी जड़ पुष्ट करती है ।

सम्पा०—पर यह ठीक नहीं है । यदि इसी राष्ट्रीय सभा द्वारा प्रातःस्मरणीय दादाभाई स्वराज्यका बीज न बो गये होते तो आज स्वराज्यकी चर्चा सुननेमें भी न आई होती । हम लोगोंको महात्मा ह्यूमके वचन भूल न जाने चाहिए । किस परिश्रम तथा उद्योगसे उन्होंने हम लोगोंको कर्तव्य-मार्गकी शिक्षा दी, और कांग्रेसके मन्तव्योंकी प्राप्तिके लिए हम लोगोंको सोतेसे जगाया । विलियम वेडर्बर्नने तो इसीके लिए अपना तन, मन, धन सभी कुछ दे दिया था । उनके लेखोंको पढ़ कर अब भी आशाका उदय हो जाता है । जातीय संगठनके लिए स्वर्गवासी गोखले दरिद्रता स्वीकार कर बीस वर्ष तक उसीकी धुनमें लगे रहे और दरिद्र ही स्वर्ग सिधारे । बदरुद्दीन तैयबजीने भी इसी द्वारा स्वराज्य शब्दका प्रचार किया । यदि पिछला इतिहास देखा जाय तो प्रत्येक प्रान्तमें स्वराज्यके भिक्षुक कांग्रेसके भक्त थे, चाहे वे भारतीय रहे हों या अँगरेज ।

पाठक—वाह साहब, आपने तो खूब घोड़ा छोड़ा । मार्गका तो आपको ध्यान ही नहीं रहा । जरा सोचिए कि मेरे प्रश्न और आपके उत्तरमें क्या सम्बन्ध है । मैंने तो स्वराज्यके

बारेमें प्रश्न किया और आपने पर-राज्यकी बात छेड़ दी। यह तो वही हुआ—पूछा, "उर्दका क्या भाव है," उत्तर मिला—"मटर १० सेर।" मैं अँगरेजोंका संबंध नहीं चाहता और आप उसीकी तान अलापे चले जा रहे हैं। इस बातसे हम आप सहमत नहीं हो सकते। इस लिए, कृपा कर आप केवल भारतीय आत्माओंका ही ध्यान रखिए। मैं और बातें—चाहे वे कितनी अच्छी हों—नहीं चाहता।

सम्पा०—जरा धीरज रखिए। मैं तो आपके मतानुसार चलनेमें असमर्थ हूँ। यदि चुपचाप मेरी बातें सुनना पसंद करें तो आपका मतलब हल हो जायगा। कहावत है कि "लड़का पैदा होते ही मर्द नहीं हो सकता।" आपकी बातोंसे तो प्रतीत होता है कि आपके लिए स्वराज्य अभी कोसों दूर है। जब आप भारतके हितैषियोंका ही आदर करना नहीं सीखेंगे तो आपकी सहायता कौन करेगा। यदि भारतमाता आपके जैसी दस-बीस सन्तान और उत्पन्न कर दे तब तो उन्नतिका मार्ग ही रुक जाय! जरा मेरी बातोंको ध्यानसे सुनिए।

पाठ०—मालूम होता है आप घुमा-फिरा कर हम लोगोंको बहकाना चाहते हैं और हमारे प्रश्नोंको ज्योंका त्यों रहने देना चाहते हैं। जिन्हें आप भारतके हितैषी बतलाते हैं उन्हें

मानता ही नहीं तो फिर आपकी बातोंको मैं क्यों सुनने लगा। जिसे आपने जातीयताके खयालसे बड़ा आदरणीय समझा—जातीयताका जन्मदाता बतलाया है—उसने भारतके लिए क्या किया? उसने तो कहा था कि शासनवर्ग न्यायसे चलेंगे, हम लोगोंको चाहिए कि हम भी उनसे प्रेमभावसे मिलें।

सम्पा०—बस, चुप रहिए। आपको शर्म आनी चाहिए। इतने बड़े प्रतिष्ठित पुरुषके बारेमें ऐसी लज्जा-जनक बातें कह रहे हैं। कैसे निर्लज्ज हो। आपमें कृतज्ञताका लेश भी नहीं रह गया है। उनसे आप क्या चाहते थे और उन्होंने क्या नहीं किया। जानते हैं भारतमाताके चरणोंमें उन्होंने अपना जीवन समर्पण कर दिया था। जब हम लोग आँखें बन्द कर कानोंको मूँद कर गाढ़ी नींदमें पड़े थे उस समय दादाभाईहीने हम लोगोंको जगाया और दिखलाया कि अँगरेज लोग हमारा खून चूसे चले जा रहे हैं। उन्हीं दादाभाईको यदि अँगरेज जनतामें अटल विश्वास था तो इसमें हर्जकी बात ही क्या है। क्या एक कदम आगे बढ़ जानेहीसे हम लोगोंको उनका महत्त्व भूल जाना चाहिए? और क्या इसीसे हम लोग ज्यादा बुद्धिमान हो गये? क्या इसे भी बुद्धिमानी कहते हैं कि जिस सीढ़ीसे हम उपर चढ़े अब उसीको ठुकरा दें। याद रखिए उसका एक

डंडा भी खिसका कि हम लोग भी गिरे। बालकसे जवान होने पर हम लोग बचपनको घृणासे नहीं देखते, बल्कि उसके लिए लालायित रहते हैं। यदि कठिन परिश्रम करके किसीने कुछ योग्यता प्राप्त की और हमें भी उसने कुछ सिखलाया और समयानुकूल उस शिक्षा द्वारा हमने कुछ काम कर लिया तो इसका यह मतलब है कि हम उस शिक्षादाताको मूर्ख कहें? और इस कहनेमें हम कितने योग्य समझे जायँगे? उचित तो यही है कि मैं उसकी इज्जत करूँ और सदा इस बातका खयाल रक्खूँ कि मैंने जो कुछ किया वह सब उसीकी बदौलत किया है। इसी बातको दादाभाईसे मीलान कीजिए तो आपको मेरा कहना अक्षरशः सत्य प्रतीत होगा। वास्तवमें भारतमें जातीयताके जन्मदाता वही थे।

पाठ०——क्षमा कीजिए। आपकी बातोंसे मेरी भ्रान्ति दूर हो गई। दादाभाई अवश्य प्रतिष्ठाके पात्र हैं। यदि आज उन्होंने इस पवित्र भूमि पर जन्म न लिया होता तो कदाचित् हम लोग अब तक सोते ही रहे होते। यदि उठे भी होते तो उत्साह हीन रहे होते। लेकिन ये सब बातें गोखलेके लिए कहाँ तक सच कही जा सकती हैं। वह तो मरते दम तक अँगरेजोंके मित्र बने रहे। जगह जगह पर उन्होंने कहा है

कि हम लोगोंको अँगरेजोंसे बहुत कुछ सीखना है। पहले उनसे योग्यता प्राप्त कर ली जाये तब स्वराज्यकी चर्चा की जाये, इत्यादि। उनके व्याख्यान पढ़नेसे तो तबीयत ऊब जाती है।

सम्पा०——इसका केवल एक मात्र कारण आपकी अधीरता है। इस विषयमें मुझे केवल इतना ही कहना है कि जो लोग अपने माता-पिताको फूँक फूँक कर कदम रखते देख बे-मन हो जाते हैं या उन्हें अपने लड़कोंकी बातें न मानते देख झिड़क उठते हैं, उनसे हम कोई आशा नहीं कर सकते; क्योंकि उन्होंने अनाज्ञाकारिताका पहला सबक पढ़ लिया है। यदि वास्तवमें देखा जाय तो स्व० गोखले हम लोगोंके पिताके तुल्य हैं। हमें उनकी उतनी ही प्रतिष्ठा करनी चाहिए जितनी हम अपने पिताकी करते हैं। फिर चाहे उनसे हम सहमत हों या न हो। यदि हमें जातीय स्वतन्त्रताकी अभिलाषा है और उसको पानेका प्रयत्न करना है तो पूर्वजोंको भूलना उचित नहीं है। जिसमें पूर्वजोंके प्रति श्रद्धा, भक्ति नहीं रह गई उसका जन्म ही व्यर्थ समझिए। क्योंकि जिस मनुष्यमें उतावला-पन है और विवेचना-शक्तिका सर्वथा अभाव है वह अपना शासन स्वयं कर ही नहीं सकता। अच्छा इस बातको जाने दीजिए। उनके कामोंका ही खयाल कीजिए। भारतीय शिक्षाके

लिए उन्होंने कितना प्रयत्न किया। क्या आप दो चार नाम हमें और ऐसे बतला सकते हैं, जिन्होंने इस महान् कार्यके लिए उनका चतुर्थांश भी प्रयत्न किया हो। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो जो कुछ उन्होंने किया निष्पक्षपात तथा शुद्ध हृदयसे किया। मातृभूमिकी सेवाको ही उन्होंने अपना परम धर्म माना था। उसके लिए वे अपनी जान भी निछावर करनेके लिए तैयार थे। जो कुछ भाव उनके हृदयमें उत्पन्न हुए उन्होंने साफ साफ कह दिया तो कुछ बुरा नहीं किया। यही सब बातें हमारी श्रद्धा तथा भक्तिको उनकी तरफ खींचती हैं।

पाठ०—तो क्या हमें प्रत्येक विषयमें अनुकरण करना चाहिए।

सम्पा०—मैंने यह कब कहा। यदि किसीका आत्मा शुद्ध रूपसे मतभेद दिखलाता है तो उसे अपनी आत्माके अनुकूल करना चाहिए। यही उनका भी मत था। मेरे कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि उनकी अप्रतिष्ठा करना अथवा उन्हें तुच्छ समझना हमारा धर्म नहीं है। क्योंकि उन्होंने हमारी भलाईके लिए बहुत कुछ किया है और जो कुछ हम करेंगे उससे उसकी कोई तुलना नहीं है। कितने अखबारवाले उनकी निन्दा करते हैं। हम लोगोंका परम धर्म है कि ऐसे निन्दावादका विरोध करें

और उनका मुँह बन्द कर दें। महात्मा गोखले स्वराज्यके स्तम्भ हैं। हमीं सच्चे हैं और सब झूठे हैं, जो हम करते हैं वही देशके लिए लाभदायक है इत्यादि बातें तुच्छ लोगोंके मुँहसे निकलती हैं।

पाठ०—अब इन लोगोंका महत्त्व कुछ कुछ मेरी समझमें आने लगा है। अब मैं इस पर सोचूँगा। लेकिन ह्यूम तथा वेडर्वर्नके विषयमें जो बातें आप कहते हैं उन पर मैं शायद विश्वास नहीं कर सकता।

सम्पा०—क्या हमें सब बातें फिरसे दोहरानी होंगी। भारतीयोंकी जगह पर अँगरेजोंको रख दीजिए, फिर देखिए सब बातें मिल जाती हैं या नहीं। सभी अँगरेजोंमें दोष लगाना सर्वथा अनुचित है। उनमेंसे कितने ऐसे हैं जो भारतके लिए स्वराज्यके पक्षपाती हैं। अन्य लोगोंकी अपेक्षा इनमें स्वार्थान्धताकी विशेषता है, पर इससे सबको बुरा नहीं कह सकते। यदि आप न्याय चाहते हैं तो न्यायका अवलम्बन करिए। जहाँ तक देखनेमें आया है वेडर्वर्नने भारतकी बुराई नहीं की है। क्या यह कम प्रशंसाकी बात है। यदि कृतज्ञता हममें नहीं है तो हमारा काम कौन करेगा। इन बातों पर आप जितना कम ध्यान दीजिएगा, उतनी ही देर आपके काममें होगी। पर यदि दूसरे यह जानते हैं कि भारतीय लोग कृतघ्न नहीं हैं तो वे

आपकी सहायता करेंगे, आपका साथ देंगे और आपको सफलता पर पहुँचावेंगे।

पाठ०—सम्पादकजी, यदि आप खफा न हों तो मैं साफ कह देना चाहता हूँ कि आपकी ये बातें बिल्कुल अनुचित हैं। भला इससे भी बढ़कर कोई दूसरी बेवकूफी हो सकती है कि अँगरेजी जनता भारतकी सहायता कर उसे स्वराज्य दिलावेगी। भला, वे लोग कब हमें स्वराज्य-प्राप्त देखना चाहेंगे। जाने दीजिए, इस पर बहस कर मैं अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहता। पहले इसी समस्याको हल कर लिया जाय कि स्वराज्य मिलनेके क्या उपाय हैं और तब शायद मैं आपकी बातें समझ सकूँगा।

आपने अँगरेजोंकी सहायता पर इतना अधिक जोर दिया कि आपकी तरफसे मुझे सन्देह होने लगा है। इस लिए इस समय इस प्रसंगको छोड़ देना ही उचित होगा।

सम्पा०—मुझे इसकी कोई खास इच्छा नहीं है। आपको मेरी ओरसे सन्देह होने लगा है, इसकी भी मुझे विशेष चिन्ता नहीं हैं। क्योंकि 'कड़वी औषध बिन पिये, मिटै न तनकी ताप,' अथवा 'अप्रियस्य च सत्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः।' इस लिए अच्छा ही हुआ जो मैंने सब बातें आपके सामने रख

दीं। हाँ, एक बातका प्रयत्न मैं अवश्य करूँगा। मैं आपका सन्देह मिटानेका प्रयत्न करूँगा।

पाठ०—मैं भी यही चाहता हूँ। यहीं पर मैं एक बात और जान लेना चाहता हूँ कि स्वराज्य तथा कांग्रेससे क्या सम्बन्ध है।

सम्पादक—सुनिए। कांग्रेसमें भिन्न भिन्न प्रान्तके लोग सम्मिलित होते थे। सम्मेलनसे उनमें जातीयताके भाव उत्पन्न हुए। सरकार जातीयताकी विरोधी थी। कांग्रेस लगातार चिल्लाती आई है कि आय तथा व्यय जनताके हाथमें होना चाहिए। जिस तरहकी स्थिति कनाडामें है उसी तरहका स्वराज्य यहाँ भी माँगा जाता है। चाहे वह मिले या न मिले, इतना ही काफी है या और कुछ चाहिए—इन बातोंका उल्लेख यहाँ पर नहीं होगा। बस हमको केवल यही दिखलाना है कि स्वराज्यकी तरफ हम लोगोंका ध्यान कांग्रेसहीने खींचा। यह बात सर्वमान्य है। इसे हम किसी तरहसे इन्कार नहीं कर सकते। यदि हम कांग्रेसको जातीय खयालसे हानिकारक मान लेते हैं तो हम उसका दुरुपयोग करते हैं और हम लोगोंका काम यहीं खतम हो जाता है; क्योंकि बिना उसकी सहायताके कोई काम नहीं हो सकता।

दूसरा परिच्छेद ।

बंग-विच्छेद ।

पाठ०—यदि आपकी बातें मान भी ली जायँ तो उससे केवल इतना ही मतलब निकलता है कि कांग्रेसने स्वराज्यकी नींव डाली । पर वास्तविक जागृतिका यह कारण नहीं प्रतीत होता । वास्तविक जागृति कब हुई और इसका क्या कारण है इसको भी मैं जानना चाहता हूँ ।

सम्पा०—प्रकृतिका अटल नियम है कि बीज कोई नहीं देखता । बीज खेतमें बो दिया जाता है, उससे अंकुर निकलता है, वही बढ़कर पेड़ होता है, उसीको लोग देखते हैं, पर बीज तो वहीं जमीनमें सड़ जाता है । बस कांग्रेसकी भी यही हालत है । पर यदि सचमुच देखा जाय तो वास्तविक जागृति "बंग-विच्छेद" के बाद हुई । प्रत्येक भारतवासीको बड़े लाट कर्जन महोदयका कृतज्ञ होना चाहिए । यह आपहीकी असीम

कृपा थी कि यह दिन देखनेको मिला। उस समय लोगोंने अनेक तरहकी प्रार्थनाएँ कीं, इंग्लैण्ड तक मेमोरियल भेजा गया, पर सुनता कौन है। कर्जनको तो यही विश्वास था कि भारत-वासी मार खाते जायँगे और बकते जायँगे, विशेष कर बंग-जनताकी तो उन्हें और भी परवा न थी; क्योंकि उस समय तक "हुज्जते बंगाला" यही प्रसिद्ध था। लोगोंकी प्रार्थनाओंका अपमान करते हुए उन्होंने "बंग-विच्छेद" कर ही डाला। वास्तवमें उस दिन बंग-विच्छेद नहीं हुआ, बल्कि ब्रिटिश राज्यका भंग हुआ। उससे ब्रिटिश राज्यको जो क्षति पहुँची उसकी पूर्ति नहीं हुई। देखिए यहाँ पर समझनेमें भूल न करिएगा। हमारे कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि अन्य जो जो अन्याय भारतके साथ किया गया है वह इससे साधारण है। नमक पर जो 'कर' लगाया गया, उसे क्या थोड़ा अन्याय कह सकते हैं। इन बातोंकी चर्चा तो हम आगे करेंगे। यहाँ पर बंग-विच्छेदके ही विषयमें कुछ कहना है। हाँ, पर जनता तो इसके विरोधके लिए कमर बाँध चुकी थी। लोगोंके क्रोध तथा क्षोभका कुछ ठिकाना न रहा। बंगीय जनता तो जान तथा मालकी भी परवा नहीं करने लगी। उन्हें अपनी शक्तिका भरोसा था और उसीके सहारे वे लोग आगबबूले हो रहे थे। जनता भी

दृढ़ थी और नौकरशाही भी अटल रही। दोनों दल भली भाँति जानते थे कि इसके क्या माने हैं; क्योंकि बंग-विच्छेदसे नौकरशाहीका कुछ और ही मतलब था। वह तो जातीयता पर ही कुठाराघात कर रही थी। स्वराज्यके आन्दोलनकी जड़ खोद रही थी। बिच्छेदको मिटाना (फिरसे जोड़ना) स्वराज्य आन्दोलनको सींचना था; पानीसे नहीं, बल्कि अमृतसे। इसी लिए नौकरशाहीने बंग-विच्छेदको जैसाका तैसा रखना चाहा। इसके बाद बंग-विच्छेद रद्द किया गया। पर इससे होता क्या है। परस्पर वैमनस्यका भाव तो बना रह गया।

पाठक—इतना तो मैंने भी समझ लिया कि "बंग-विच्छेद" ही वास्तविक जागृतिका कारण है। पर यह तो बतलाइए कि इससे और परिणाम क्या निकले।

सम्पादक—इसके पहले आज तक तो हम लोगोंको यही विश्वास था कि अपना दुःखड़ा रोनेके लिये हमें राजा तक निवेदन-पत्र भेजना चाहिए। और यदि उसके यहाँ भी हमारी सुनवाई नहीं होती तो लाचार चुपचाप बैठ जाइए और मेमोरियल भेजा कीजिए। इसके सिवा और कोई वश नहीं था। परन्तु बंग-भंगने कुछ नई बातें सिखलाईं। पहले तो यह कि मेमोरियल बिना किसी सहायताके कोई काम नहीं कर सकता।

उसका सहायक केवल एक आत्मबल है । यदि जनता शारीरिक कष्टका ध्यान छोड़ कर आत्मबलसे काम ले तो वह बहुत कुछ काम कर सकती है । बंग-भंगके पूर्व यह बात किसीको भी नहीं ज्ञात थी । इसका पहला पहल परिचय उसी समयसे मिलता है । समाचार-पत्रोंने जी खोल कर लिखना शुरू किया । इसके पहले जनता जिन बातोंकी चर्चा करते डरती थी अब खुल्लमखुल्ला सम्वाद-पत्रों तथा लेक्चरोंमें उनकी चर्चा होने लगी । स्वदेशी आन्दोलन जारी हुआ । इसके पहले लोग अँगरेजोंके नामसे डरते थे; अब वे सब बातें जाती रहीं । अब तो उन्हें जान-मालकी भी परवा नहीं थी । उनके साथ ज्यादती भी मनमानी की गई । परिणाम यह हुआ कि अब भी भारतमाताके अनेक अमूल्य रत्न निर्वासनकी यातना सह रहे हैं । केवल मेमोरियल आदिमे यह परिणाम न निकला होता । जो जोश तथा उत्साह लोगोंमें उस समय आया वह केवल बंगाल ही तक नहीं था । उसकी हवा बड़े जोरोंसे बही और वह पश्चिममें पंजाब तथा दक्षिणमें कन्याकुमारी तक फैल गया ।

पाठक—आप बहुत ठीक कहते हैं । बंग-भंगसे वास्तवमें बड़ा लाभ हुआ ।

सम्पादक—इसमें तो कोई शक नहीं । पर आप जानते ही हैं कि कमलके साथ साथ कीचड़ भी रहता है । इस

लाभके साथ उसने कुछ बुराई भी पैदा की। पहले तो हम लोगोंके नेताओंमें मतभेद हो गया। नर्म तथा गर्म दलका नाम जो आजकल आप बहुधा सुनते हैं, वह इसीका फल है। कदाचित् आप इसके अर्थको तत्त्वतः नहीं समझ सके होंगे, तो सुनिए। इसके कई अर्थ हैं, कोई तो एकको डरपोंक और दूसरेको निर्भय दल बतलाता है। कोई पहलेको सरकार या नौकरशाहीका मित्र बतलाता है, इत्यादि। मेरी समझमें इनके उचित अर्थ यही होंगे कि एक तो गरियार बैलकी तरह चल रहा है जो "दिनभर चले अढ़ाई कोस" और दूसरे बारह सिंहेकी तरह छलांग मार रहे हैं कि कहीं "झाड़ीमें सींग फँसा और मरे।" अब परस्पर वैमनस्य भी अधिकाधिक होता जा रहा है। एक दूसरे पर विश्वास नहीं रखता, उस पर अनेक प्रकारका दोषारोपण करता है। सूरत कांग्रेसके समय तो इसकी मात्रा इतनी बढ़ी थी कि वहाँ झगड़ा ही हो गया। इतना तो मैं अवश्य कह सकता हूँ कि इस प्रकारके कलहों तथा वैमनस्योंसे हानिको छोड़ देशको किसी प्रकारका लाभ नहीं है। पर ऐसे झगड़े बहुत दिन तक रह भी नहीं सकते। यदि दोनों तरफके नेता लोग जरा भी ध्यान दें तो ऐसे झगड़े बहुत जल्दी निपट सकते हैं।

तीसरा परिच्छेद ।

अशान्ति तथा हलचल ।

पाठक—इतना तो निश्चय हो गया कि भारतमें वास्तविक जागृति "बंग-भंग" से आरम्भ होती है । इससे लोगोंमे जो अशान्ति फैली उसे क्या आप अच्छा समझते हैं ।

सम्पा०—जब आदमी नींदसे उठता है तो वह एकदम जागृत अवस्थामें नहीं हो जाता । उठनेके पहले वह अँगड़ाई लेता है, कुछ देर तक बेचैन रहता है और तब सुस्ती झाड़ कर उठ बैठता है; या यों कहिए कि खड़ा हो जाता है । यही हालत हम लोगोंकी समझिए । 'बंगभंग' ने हम लोगोंकी निद्रा तो अवश्य भंग की, पर हम लोग अभी उठ खड़े नहीं हुए । नींदकी खुमारी अब तक भी हमारी आँखोंमें मौजूद है । पड़े पड़े हम लोग अँगड़ाई लेते हुए सुस्ती झाड़ रहे हैं । इस लिए जैसे नींद खुल जाने पर, उठनेके पहले अँगड़ाई लेने तथा

सुस्ती झाड़नेके लिए कुछ समय आवश्यक है उसी तरह मोह, आलस्य तथा नींदके भंग हो जाने पर एकदमसे उठ खड़े होनेके पूर्व यह अशान्तिका समय आवश्यक समझा जाना चाहिए; क्योंकि यह अनिवार्य था। जब नींदसे हम लोग उठते हैं तो पड़े पड़े अँगडाई ही थोड़े लेते रहते हैं, दस पाँच मिनिटके बाद खुमारी दूर कर उठ ही जाते हैं। इसी तरह यदि वास्तवमें अशान्ति फैली है तो हम लोग उसे दूर कर खड़े ही होनेका प्रयत्न करेंगे।

पाठ०—क्या और भी किसी प्रकारकी अशान्ति वर्तमान है।

सम्पा०—अशान्ति नहीं, बल्कि असन्तोष है। उसीको आप अशान्ति कह सकते हैं। इसका वास्तविक नाम असन्तोष है। ह्यूम महोदयकी कल्पना थी कि कि भारत-जनतामें असन्तोष फैलना स्वाभाविक है। इससे बड़े बड़े काम होते हैं। जब तक कोई मनुष्य अपनी वर्तमान स्थितिसे प्रसन्न है तथा सन्तुष्ट है तब तक उससे अन्य काम होना कठिन है। कोई बड़ा काम वह तभी कर सकता है जब वह अपनी वर्तमान स्थितिको सन्तोष-जनक नही समझता। जब तक कपड़े प्यारे हैं

तब तक मैं उन्हें फेंक नहीं सकता। जब वे दिलसे उतर जायँगे तभी उनको फेंक कर नये कपड़ोंकी अभिलाषा होगी। मोह-निद्रामें पड़े, राम-नामका भजन करते—"चना चवैनी गंगजल जो पुरवे करतार, काशी कबहुँ न छोड़िये विश्वनाथ दरबार।" "भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषं—" इत्यादि वेद-मन्त्रोंको जपते जपते हम लोगोंका जीवन उसी दशामें बीतता चला जाता और हम लोग उसी दशाको सबसे अच्छा समझ कर प्रसन्नता-पूर्वक उसे अपनाये रहे होते। पर हम लोगोंके भाग्यसे हमारे भारतीय नेताओं तथा अँगरेज महात्माओंने निबन्ध लिख-लिख कर और हम लोगोंको हमारी तथा अन्य देशोंकी स्थितिका ज्ञान करा कर हमारी आँखें खोल दीं। हम लोग तबसे अपनी गिरी दशाको जानने लगे। उसका ज्ञान होते ही अशान्ति फैली, अशान्तिसे हलचल मच गई। और कितनी जानें गईं, कितने जेलकी हवा खानेको भेजे गये और कितने प्यारी मातृभूमिसे सदाके लिए वियुक्त किये गये। पर इसका यहीं अन्त होने-वाला नहीं है। कुछ दिन और यही क्रम रहेगा और यह आवश्यक भी है। इन सबका सुधारका अंग समझिए, पर कभी कभी इनसे बड़े बुरे परिणाम भी निकलते हैं।

चौथा परिच्छेद ।

स्वराज्य क्या वस्तु है ।

पाठक—आपकी कृपासे इतनी बातें तो हमें मालूम हो गईं कि कांग्रेसने हमें जातीयता सिखलाई और "बंगभंग" से हम लोगोंकी निद्रा भंग हुई और देशमें अशान्ति तथा हलचलने डेरा जमाया । अब मैं स्वराज्यके बारेमें कुछ जानना चाहता हूँ। कदाचित् इसमें हम लोग सहमत न हों ।

सम्पादक—बहुत कुछ सम्भव है कि इसमें आप हम दोनों सहमत न हों । इस समय जिसे देखिए वही स्वराज्य स्वराज्य रट रहा है । पर यह किसीने नहीं सोचा है कि वह क्या वस्तु है । कितने तो यही कहते हैं कि नौकरशाही अब अपना काम कर चुकी, उसे यहाँसे निकाल देना चाहिए । पर मेरी समझमें नहीं आता कि इसका क्या कारण है । क्या उन्होंने इस पर पूरी तरहसे विचार किया है । मैं यहीं पर आपसे भी

एक प्रश्न पूछ लेना चाहता हूँ। थोड़ी देरके लिए मान लीजिए कि जो कुछ हम माँगते हैं वह मिल जाय तो क्या अँगरेजोंको यहाँसे निकाल देना जरूरी होगा। और थोड़ी देरके लिए मान लिया जाय कि वे चले भी गये तब क्या किया जायगा।

पाठक—इस प्रसंगमें इसका उत्तर देना उचित न होगा उनके चले जाने पर यह बात उचित रूपसे निधारित की जा सकती है। आपके कथनानुसार यदि वे शासनकी बागडोर छोड़ कर हट गये तो हम लोग उन्हींकी शासन-पद्धतिसे काम लेंगे। हम लोगोंको सेना इत्यादि भी मिल जायगी और सारा कंटक दूर हो जायगा।

सम्पा०—कदाचित् आपका यही खयाल हो। पर यहाँ पर आप हममें मतभेद है। इस विषयमें मैं वादविवाद नहीं करना चाहता। मुझे केवल आपके प्रश्नोंका उत्तर देना है और वह मैं आपसे कई प्रश्न पूछ कर ही कर सकता हूँ। पहले यह तो बतलाइए कि अँगरेजोंको निकाल भगानेमें आपका क्या तात्पर्य है।

पाठ०—क्या आप नहीं देख रहे हैं कि भारतकी क्या दशा हो रही है। सालमें करोड़ों रुपया तो बाहर जाता है

और हम लोग मुट्ठीभर चनेके लिए तरस रहे हैं। जिस तरह हो सकता है सभी उच्चपद वे अपने हाथोंमें रक्खे हुए हैं और मामूली नौकरियाँ उन्होंने हम लोगोंके लिए छोड़ दी हैं। गोया हम लोग 'दास' उत्पन्न हुए हैं। यह सब उनके शासनहीका दोष न है। दूसरे उनका व्यवहार कैसा दुष्ट होता है।

सम्पा०—थोड़ी देरके लिए मान लीजिए कि वे हम लोगोंकी एक कौड़ी भी यहाँसे बाहर नहीं ले जाते। अच्छे अच्छे ओहदों पर हम लोगोंको भी नियुक्त करते हैं और भले आदमी बन जाते हैं तब तो उनके रहनेमें आपको किसी तरहकी आपत्ति नहीं है।

पाठ०—आपका यह प्रश्न तो बड़ा बेढंगा है। यदि कोई आपसे पूछे कि यदि शेर अपनी पाशविक वृत्ति छोड़ कर सच्चरित्र हो जाय तो क्या आप उसके पास निधड़क जा सकते हैं। ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देना पागलपन सा है। हाँ यदि आप यह माननेको तैयार हैं कि शेर अपनी पाशविक वृत्ति छोड़ सकता है, तब यह मानना कोई कठिन नहीं होगा कि अँगरेज लोग भी अपनी प्रकृति बदल देंगे। पर अनुभव यह नहीं बतलाता और ऐसा होना भी प्रकृतिके नियमोंके विरुद्ध है।

सम्पा०—खैर इन झगड़ोंको जाने दीजिए। अच्छा, अब यह बतलाइए कि यदि कनाड़ा तथा दक्षिण-अफ्रिकाके आधार-

पर हम लोगोंको स्वराज्य मिल जाय तब तो सब शिकायतें दूर हो जायँगी।

पाठक—यह प्रश्न भी ऊपरवाले प्रश्नकी भाँति ही बेढंगा है; क्योंकि जब हम लोगोंमें उतनी शक्ति होगी तभी वह हमें मिलेगा। तब हम लोग स्वराज्यका झण्डा फहरावेंगे। जो स्थिति इस समय जापानकी है वही तब भारतकी होगी। तब सब सामान हमारे पास हो जायँगे। उस समय संसार जानेगा कि भारत भी कहीं है।

सम्पा०—आपने कल्पना तो खूब की। आपके कथनका यह आशय हो सकता है कि अँगरेजी शासनका अनुकरण भर हम लोग करें, पर अँगरेजोंकी बू तक यहाँ नहीं रहने दें। शेरकी आदतें आप अपनेमें लाना चाहते हैं, पर उसका संसर्ग नहीं चाहते। आप भारतको विदेशी बनाना चाहते हैं और हिन्दुस्तान न पुकार कर उसे इङ्गलिस्तान पुकारना चाहते हैं। पर मैं इस तरहका स्वराज्य नहीं चाहता।

पाठक—मैंने आपके सामने अपने विचार प्रगट कर दिये। मेरी समझमें भारतमें इसी तरहके स्वराज्यकी आवश्यकता है। यदि हम लोग प्राप्त शिक्षाका उपयोग करना चाहते हैं, यदि मिल आदि विद्वानोंके लेख किसी महत्त्वके हैं, यदि अँगरेजी

व्यवस्थापक-सभाका अनुकरण करना है तो हमारी समझमें अँगरेजोंका पूरी तरहसे अनुकरण करना ही हमारा अभीष्ट है। हम तो उनका अनुकरण यहाँ तक करना चाहते हैं कि जैसे वे लोग अपने मुल्कमें किसीको जमने नहीं देते उसी तरह हम लोग भी अपने देशमें उनका अथवा अन्य किसी विदेशीका पैर क्यों जमने दें। जो कुछ उन लोगोंने अपने देशमें किया है और कहीं भी नहीं किया गया है। इस लिए मैं उन्हींकी व्यवस्थाका अनुकरण श्रेयस्कर समझता हूँ। अच्छा तो आपकी इसमें क्या राय है।

सम्पादक—जरा धीरताकी आवश्यकता है। यदि आप धैर्यसे हमारी बातें सुनते रहेंगे तो आपका प्रश्न यों ही हल हो जायगा। स्वराज्यका तत्त्व जानना मेरे लिए उतना ही कठिन प्रतीत होता है जितना आप उसे सरल समझ रहे हैं। इस लिए तब तक हम इतना ही कह कर छोड़ देंगे कि जिसे आप स्वराज्य कह रहे हैं वह वास्तविक स्वराज्य नहीं है।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

इंग्लैंडकी स्थिति ।

पाठक—सम्पादकजी, आपके कहनेसे तो विदित होता है कि इंग्लैण्डका शासन अनुकरण करने योग्य नहीं है ।

सम्पादक—आपकी धारणा एकदम सही है । यदि इंग्लैंडकी वर्तमान दशा पर विचार किया जाय तो रोमाञ्च हो उठता है । मैं तो दिन-रात परमेश्वरसे यही माँगता रहता हूँ कि किसी भी दशामें यह देश क्यों न रहे, विदेशके जैसी बातें इसमें नहीं आने पावें । जिस व्यवस्थापक-सभाको अभी आपने संसारके सभी व्यवस्थापक-सभाओंकी जन्मदात्री बतलाया है, जानते हैं उसकी वास्तविक दशा क्या है । यदि धृष्टता न हो तो उसके लिए 'खानगी' शब्द बहुत ही उपयुक्त होगा । यह शब्द है तो जरा निंद्य, पर उपयुक्त अवश्य है । उसने अपनी ओरसे आज तक एक भी प्रशंसाके योग्य कार्य नहीं किया है । उसकी जैसी स्थिति है उससे प्रत्यक्ष है कि बाह्य उत्तेजनाके बिना वह कोई

काम कर ही नहीं सकती। इसको हमने 'खानगी' इस खयालसे कहा है कि इसके स्वामी बराबर बदलते रहते हैं (प्रधान मन्त्री ही इस सभाके स्वामी होते हैं)। यदि आज उस पर आस्किथका अधिकार है तो कल ही कोई दूसरे आ सकते हैं।

पाठक—आपने यह ताना मारा है। परंतु पक्षपात रहित होकर देखिए तो 'खानगी' शब्दका उचित प्रयोग नहीं किया गया है। जब उसके कार्यकर्ता जनतामे निर्वाचित किये रहते हैं तो जनताका जोर उस पर अवश्य ही रहेगा। मेरी समझमें यही तो उसके प्रधान गुण हैं।

सम्पादक—आप गलती पर हैं। आइए इस विषय पर जरा ध्यानसे विचार करें। जनता अपनी समझमें योग्यसे योग्य प्रतिनिधि चुन कर भेजती है। और वे लोग भी निःस्वार्थ भावसे बिना कुछ लिये काम करते हैं; अर्थात् जनताका भला ही उनके लिए परम कार्य है। पढ़ी-लिखी जनता निर्वाचनमें कदाचित् ही भूल करेगी। ऐसी सभामें आवेदन-पत्र, प्रार्थना-पत्र, मेमोरियलकी क्या जरूरत है। उसका काम इतना न्याय्य होना चाहिए कि देखनेवाले दंग हो जायँ। पर अभाग्य-वश बहुधा देखनेमें आता है कि इसके सदस्य स्वार्थी तथा संकुचित हृदयके होते हैं। प्रायः सभी अपने स्वार्थकी चिन्ता रखते हैं। केवल भविष्य-निर्वाचनका भय ही उन्हें जनताके लिए कुछ कर

देनेको उत्तेजित करता है। उनकी बातोंका भी कोई ठिकाना नहीं रहता है। जो कुछ वे लोग करते हैं उसे जरासी ही बात पर रद्द कर दे सकते हैं। कोई भी काम उन लोगोंका ऐसा नहीं है जो चिरस्थायी समझा जा सकता है। कभी कभी तो ऐसा भी देखनेमें आया है कि सभामें एक ओर तो किसी भारी विषय पर जोरोंमें बहस चल रही है और दूसरी तरफ सभासद लोग पैर फैलाये कुर्सी ही पर खुर्राटे ले रहे हैं (प्रधान-मन्त्री लार्ड नार्थ)। कभी एक सभासद व्याख्यान दे रहा है और बाकीके लोग अपने गप्प लड़ानेमें भिड़े हैं। उनको उसका ध्यान ही नहीं है। कार्लाइलने उसका नाम "चण्डूखाना" रक्खा था। यही कारण है जो वे बिना सोचे-समझे अपनी राय दे बैठते हैं। देखनेवालेको विदित हो जाता है कि मानो भेड़िया-धसान है। दलबन्दीका तो वहाँ कहना ही क्या है। हाँ, सभाके आचार-विचार तथा नियमोंका परिपालन भली भाँति होता है। यदि कोई सभासद दलसे पृथक् होकर अपनी स्वतन्त्र संमति प्रगट करता है तो लोग उसे बनाते हैं। इसकी अपेक्षा यदि वही द्रव्य तथा समय कुछ थोड़े शिक्षित समाजको दे दिया जाय और शासन-भार उनके सिर पर रख दिया जाय तो इंग्लैंडकी अपरिमित उन्नति हो सकती है। यदि वास्तवमें पूछिए तो व्यवस्थापक-सभा एक तरहका खिलौना है,

जिसको उन लोगोंने विशेष धन लगा कर बनवाया है। यह सुन कर आपको आश्चर्य होता होगा, पर यह मेरी ही राय नहीं है—अनेक शिक्षित अँगरेजोंने भी यही बात कही है। अभी थोड़े ही दिन हुए उसी सभाके किसी सदस्यने कहा था कि जिस मनुष्यको ईसाई धर्मका जरा भी खयाल है वह इसका सदस्य कदापि नहीं होगा। दूसरेने कहा था कि अभी तो यह निरा बच्चा है। यदि उसीका कहना सच है तो भी इससे क्या आशा की जा सकती है। जब सात-सौ वर्षमें भी इसका लड़कपन न गया तो भला यह युवावस्था कब प्राप्त करेगी।

पाठ०—आपने तो मुझे चिन्तामें डाल दिया। पर मैं आपकी सभी बातें माननेको तैयार नहीं हूँ। आपने तो एकदमसे अचम्भेकी बात कह डाली। अच्छा, पहले 'स्वानगी' शब्दकी व्याख्या कर दीजिए।

सम्पादक—मैं भी मानता हूँ कि आप मेरी बातोंसे एकदम सहमत नहीं हो सकते। यदि इस विषयका साहित्य पढ़नेका आप प्रयास करेंगे तो आपको सब बातें विदित हो जायँगी। इस सभाका कोई भी योग्य स्वामी नहीं है। प्रधान-मन्त्रीके अधीन इसकी गति अनवस्थित रहती है। बल्कि स्वानगीकी भाँति उसे इधरसे उधर और उधरसे इधर लुढ़कना पड़ता है।

प्रधान-मन्त्री सबकी उन्नतिका उतना अधिक ध्यान नहीं रखता, जितना अपने स्वत्व तथा अधिकारकी रक्षाका ध्यान रखता है। उसका सारा प्रयत्न अपने दलकी सफलतामें लगता है। सदा न्याय करनेका भी ध्यान उसे नहीं रहता। कितने प्रधान-मंत्रियोंने केवल अपनी दलबन्दीके खयालसे न्यायका गला घोंट कर कितने अनुचित कार्य इसके द्वारा किये हैं, इन सब बातोंका खयाल रख कर मनन करना चाहिए।

पाठ०—आप तो उसीकी निन्दा करने लगे जिसे अब तक हम लोगोंने सबसे अधिक देशभक्त तथा न्यायी मान रक्खा था।

सम्पा०—ठीक है, मैं प्रधान-मन्त्रीके विरोधमें कुछ भी नहीं कहता, पर उनके सम्बन्धमें जो कुछ देखने तथा सुननेमें आता है उससे स्पष्ट है कि वे सच्चे देशभक्त नहीं कहे जा सकते। हाँ केवल एक दोष उनमें नहीं है; अर्थात् वे लोग घूँस नहीं लेते। पर इससे क्या, केवल इसीसे वे देशभक्त अथवा ईमानदार नहीं कहे जा सकते! क्योंकि और भी कई बातें हैं जिनसे इस बातकी परीक्षा होती है और उनमें इनकी त्रुटि है। आप तो घूँस नहीं लेते, पर अपना काम निकालनेके लिए अन्य कर्मचारियोंको कमसे कम उपाधिकी घूँस तो अवश्य देते हैं। मैं तो दृढता-पूर्वक कह सकता हूँ कि न तो उनमें ईमानदारीका लेश है और न आत्मबल ही है।

पाठक—पार्लमेन्टकी बातें जो आपने कहीं उससे हमें विलायतके निवासियोंके ऊपर भी सन्देह होने लगा है। यदि कृपया आप उनके रहन-सहन और चालढालके बारेमें भी कुछ बताते तो मैं उनकी शासन-पद्धतिका कुछ अनुमान कर सकता।

सम्पादक—वहाँकी जनता सम्वाद-पत्रों पर अधिक भरोसा रखती है, वही उनके-पूज्य-देवता हैं। सब बातोंका पता उन्हें उन्हींसे मिलता है, इससे उन पर सच्ची बातें जल्दी प्रकट ही नहीं होती; क्योंकि संवाद-पत्र प्रायः झूठी बातें लिखा करते हैं। एक ही बातको प्रत्येक सम्वाद-पत्र अपने अपने ढंगसे लिखेंगे अर्थात् जिस दलके सदस्यसे वह पत्र सम्पादित किया जाता होगा, उसी दलके विचार तथा मतानुसार उस सम्वादका खण्डन अथवा मण्डन किया जायगा। एक ही व्यक्तिको कोई सत्य-मूर्ति बतलावेगा और कोई बेईमानोंका दादा कहेगा। तब आप स्वयं समझ सकते हैं कि जिन लोगोंके सम्वाद-पत्रोंकी यह गति है उनकी दशा ही क्या होगी।

पाठक—कृपा कर उसका भी संक्षेपमें वर्णन कर जाइए।

सम्पा०—इनकी राय स्थिर नहीं रहती है। क्षण क्षण पर उसमें परिवर्तन होता रहता है। प्रकट रूपमें भी दिखलाया जाता है कि कमसे कम सातवें वर्ष तो इनकी रायमें परिवर्तन अवश्य होता है। घड़ीके लटकनकी तरह यह इधरसे उधर

घूमा करती है; कभी भी स्थिर नहीं रहती। जनता प्रायः उसीका साथ देती है जो जोशीली स्पीचसे उसे मुग्ध कर ले, अथवा दावत इत्यादिसे उसे वशमें कर ले। जब जनताकी यह दशा है तो पार्लमेण्टकी भी वही दशा होगी। हाँ, एक गुण उनमें अवश्य है जिसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की जा सकती है। अपने देशकी रक्षाके लिए वे जान-माल सभी त्यागनेको तैयार रहते हैं। यदि कोई भी उसका अकल्याण चाहता है तो वे उसको निर्मूल कर देनेहीका प्रयत्न करते हैं। पर इसीमें समग्र गुणोंका अन्त नहीं है और केवल इसीके कारण उनका अनुकरण करना भी उचित नहीं है। कमसे कम मुझे तो पक्का विश्वास है कि यदि भारत विलायतका अनुकरण करना चाहता है तो उसके नाशके दिन दूर नहीं समझना चाहिए।

पाठक—तो क्या मैं यह जान सकता हूँ कि वहाँकी ऐसी दशा क्यों है?

सभ्या०—इसमें जनता निर्दोष है। आधुनिक सभ्यताके कारण ये सब बातें देखनेमें आ रही हैं। आधुनिक सभ्यताको वास्तविक सभ्यता कहना सर्वथा सभ्यताकी हँसी उड़ाना है। इसीकी हवासे यूरोपके देश प्रति दिन अधःपतनको चले जा रहे हैं।

छठा अध्याय।

सभ्यता।

पाठ०—आधुनिक सभ्यता पर जो आप दोष लगाते हैं मैं जान लेना चाहता हूँ कि तब आप सभ्यताका क्या अर्थ करते हैं।

स०—यह केवल मेरा ही मत नहीं है, बल्कि अनेक अँगरेज भी आधुनिक सभ्यताको वास्तविक सभ्यता नहीं बतलाते। इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। सभ्यताके नाम पर समाजमें प्रचलित बुराइयोंको रोकनेके लिए सभा-सोसाइटियाँ स्थापित की गई हैं। किसी अँगरजने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम उसने "सभ्यता और उसके साधनके उपाय रक्खा है।" उसमें उसने दिखलाया है कि आधुनिक सभ्यता केवल एक प्रकारका रोग है।

पाठ०—पर यह बात तो सबको विदित नहीं है।

सम्पा०—इसका तो साधारण जवाब यह है कि हम लोग इस विषय पर आपसमें बातचीत नहीं करते । जो लोग आधुनिक सभ्यता पर मुग्ध हैं वे इसके प्रतिकूल अपनी आवाज उठा ही नहीं सकते । वे सदा उसकी पुष्टिका ही प्रयत्न करेंगे; क्योंकि भूलसे अथवा प्रमादसे वे इसीको वास्तविक सभ्यता समझे बैठे हैं । जैसे सोते हुए मनुष्यको स्वप्नावस्थामें स्वप्नकी सब बातें यथार्थ प्रतीत होती हैं और जागृत होने पर उसका भ्रम दूर होता है आधुनिक सभ्यतामें विश्वास करनेवालेकी भी यही दशा है । सभ्यताके संबंधकी जितनी पुस्तकें हम लोग पढ़ते हैं वे प्रायः उन्हीं लोगोंकी लिखी रहती हैं जो आधुनिक सभ्यताके पक्षपाती हैं । उनमें बड़े बड़े विद्वान् भी हैं और उनके लेख हम लोगोंको मुग्ध कर देते हैं ।

पाठक—यह तो एक विचित्र बात जान पड़ती है । इस विषय पर आप अपना मत भी बतलाइए ।

सम्पादक—पहले यही देखना चाहिए कि ‘ सभ्यता ’ से किस ‘ स्थितिका ’ बोध होता है । वास्तविक सभ्यता वही है जिसमें मनुष्य शरीर-साधनको ही जीवनका मुख्य उद्देश्य मानते हैं । उदाहरणके लिए—यूरोपवाले सौ वर्ष पहलेके बनिस्बत आज कितने अच्छे बने हुए तथा स्वच्छ मकानोंमें

रहते हैं। यह सभ्यताकी एक निशानी है और इससे शारीरिक सुख मिलता है। किसी समय ये लोग चमड़ा पहनते थे और अस्त्रके स्थान पर तलवार बाँधते थे। वे ही लोग अब विविध भाँतिके सुन्दर सुन्दर वस्त्रोंसे अपने शरीरको भूषित करते हैं और भालों तथा बर्च्छोंके स्थान पर अब तमञ्चे लेकर चलते हैं। इतना ही नहीं अब चारों ओर यही हवा फैल गई है। जिस देशमें अधिक वस्त्र धारण करनेका रिवाज नहीं था और यदि वहाँके लोग भी इन्हीं यूरोपवालोंकी तरह अपने शरीरको अधिक कपड़ोंसे लाद लें तो वे भी असभ्यसे सभ्य कहलाने लगते हैं। किसी समय यूरोपमें हल-बैलसे खेती होती थी, पर इस समय बाष्पकी शक्ति द्वारा उसका चौगुना या पचगुना काम हो सकता है। यह भी सभ्यताके लक्षण हैं। पहले गिने-गिनाये लोग पुस्तकें लिखते थे और वे अतीव उपयोगी होती थीं, अब कोई भी मनुष्य मनमानी पुस्तक लिख कर छपवा सकता है और लोगोंके पवित्र मनको कलुषित कर देता है। पहले लोग छकड़ोंमें बैठ कर यात्रा करते थे, पर अब तो लोग आस्मानमें चिड़ियोंकी भाँति उड़ने लगे हैं। इसे सभ्यताका शिखर कहते हैं। कहा जाता है कि अब थोड़े ही दिनोंमें कपड़े पहनेके लिए भी यन्त्र बना दिये जाएँगे। मनुष्यको इसके लिए भी

हाथ-पैर नहीं हिलाना-डुलाना पड़ेगा। बस बटन दबाया कि कपड़े आपसे आप पास आ गये। उनके दैनिक जीवनकी सारी सामग्री बस कलों द्वारा आ जाया करेगी। युद्धहीको देखिए, लड़नेके पूर्व लोग अपनी ताकत तथा सैन्यबलको आजमा लिया करते थे, पर अब उसकी आवश्यकता ही न रही। कहीं पहाड़ पर एक मशीनगन लगा दीजिए और अकेला एक आदमी हजारोंकी जाने लेनेके लिए काफी है। पहले लोग खुले मैदानमें—जहाँ स्वच्छ हवा मिलती हो—अपनी इच्छानुसार काम करते थे, पर आजकल सहस्रों कुली एक कारखानेमें ठूँस दिये जाते हैं, जहाँ उन्हें जान जोखममें डाल कर काम करना पड़ता है और उससे लाभ केवल कारखानोंके मालिक करोड़पतियोंको होता है। उनकी दशा पशुओंसे भी बदतर है। पहले दासताकी प्रथा थी और लोग शक्तिके बलसे दास बना लिये जाते थे, पर अब लोग रुपयेके जोरसे तथा तज्जनित आरामके लिए दासता ग्रहण करते हैं। अब ऐसी ऐसी बीमारियाँ सुनाई देती हैं जिनका स्वप्नमें भी अनुमान नहीं किया गया था। आज उन्हींके उपायोंके निकालनेमें सहस्रों डाक्टर लगे हैं। अब इससे बढ़ कर सभ्यताका क्या नमूना हो सकता है। पहले समयमें सम्वाद भेजनेमें कितनी कठिनाई तथा व्यय उठाना पड़ता

था, पर अब तो दो पैसे खर्च कीजिए और घर बैठे जिसके पास जो चाहे लिख भेजिए। पहले घरमें बना हुआ पदार्थ दो या तीन बार भोजनके लिए मिलता था, पर अब तो लोगोंको प्रत्येक दो घण्टेके बाद कुछ न कुछ खानेको चाहिए, जिससे अब उन्हें दूसरे कामोंके लिए समय ही नहीं मिलता। इस विषय पर लिखी हुई सैकड़ों ही पुस्तकें भी हैं। ये सब सभ्यताके दृष्टान्त हैं और यदि कोई इनका विरोध करे तो वह मूर्ख समझा जाता है। इस सभ्यतामें सदाचार तथा धार्मिक बातोंमें कोई सम्बन्ध नहीं। धर्मको तो वे लोग ढोंग समझने लगे हैं और उसका कारण अंध-विश्वास बताते हैं। कितने तो झूठे धार्मिक बन सदाचारकी शिक्षाके बहाने दुराचार सिखाते हैं। ऊपर जितनी बातें बतलाई गई हैं उनमें सदाचारका तो नामो-निशान नहीं हैं—वे केवल शारीरिक साधनका प्रयत्न हैं, पर उसमें भी सफलता नहीं है।

इसे भ्रष्टता कहते हैं और यूरोपवालोंके दिमागमें इसकी गन्ध इस प्रकार समा गई है कि इसके पीछे वे मतवाले हो रहे हैं। न तो उनमें शारीरिक बल है न साहस। वे केवल नशेके सहारे अपनी शक्तिको स्थिर रखते हैं। एकान्त-वास उन्हें दुःखरूप जान पड़ता है। गृहोंकी मर्यादा स्त्रियाँ रास्तोंमें भटकती

फिरती हैं या कारखानोंमें कुलीका काम करती हैं। पेटके लिए केवल इंग्लैंडमें करीब पाँच लाख स्त्रियाँ किस विपत्तिकी दशामें कारखानों अथवा अन्य स्थानोंमें काम कर रही हैं। इसी कारण स्त्रियोंके अधिकारके लिए वहाँ इतना भारी आन्दोलन उठ रहा है।

पर इसको रोकनेके लिए प्रयत्न करना भी व्यर्थ है। केवल चुपचाप इसको देखते चलिए, इसका क्षय आपसे आप हो जायगा। मुसल्मानी धर्म्मके अनुसार इसे शैतानोंका युग और हिन्दू धर्मानुसार इसे कलियुग कहना चाहिए। इसका पूरा परिचय तो मैं दे नहीं सकता। अँगरेजोंके जीवनको यह नष्ट कर रहा है। पार्लिमेण्टको दासताका प्रत्यक्ष उदाहरण समझना चाहिए। इन बातों पर पूर्ण रूपसे विचार करने पर अँगरेजोंसे सहानुभूति होने लगती है। वे बड़े चतुर हैं, इस कारण किसी न किसी दिन इस बुराईको अवश्य अपनेमेंसे निकाल बाहर कर देंगे। क्योंकि उत्साही तथा परिश्रमी होनेके कारण उनके विचारोंमें दिन दिन परिवर्तन होता है। उनका हृदय भी अच्छा है। इस आधुनिक सभ्यताका लोप अवश्य होगा, पर इस समय तो यह यूरोपको बे तरह दबोचे हुए है।

सातवाँ अध्याय ।

भारतका सत्यानाश क्यों हुआ ?

पा०—सभ्यताके विषयमें आपने इतनी बातें कहीं कि दिमाग ठिकाने नहीं रहा । यूरोपवालोंका किस विषयमें अनुकरण करना चाहिए और किस विषयमें नहीं करना चाहिए, इस पर मैं विचार करूँगा । पर एक बात मैं आपसे अभी पूछा चाहता हूँ । यदि आपके कहनेके अनुसार आधुनिक सभ्यता रोग है और इंग्लिस्तान भी उस रोगसे ग्रस्त है तो वह भारतको अपने चुङ्गलमें किस तरह फँसा कर अब तक रख सका है ।

सम्पा०—यह प्रश्न बहुत कठिन नहीं है । यहीं पर स्वराज्यकी मीमांसा की जायगी और उस प्रश्नका भी उत्तर यहीं पर हल हो जायगा । सबसे पहले यहाँ इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए कि अँगरेजोंने भारतको किस तरह अपने अधिकारमें किया । अँगरेजोंने भारतको अपने अधिकारमें नहीं किया,

बल्कि हमीं लोगोंने भारत उनके हाथों सौंपा है। कोई अपने शक्तिके भरोसे वे हम लोगों पर शासन नहीं कर रहे हैं, बल्कि स्वयं हम लोगोंने उन्हें अधिकार दे दिया है। अब यह देखना चाहिए कि ये बातें कहाँ तक सच हैं। उनके भारत आनेका अभिप्राय केवल व्यवसाय था। अब जरा कम्पनीका समय स्मरणमें लाइए। कम्पनीको इतनी शक्ति किसने प्रदान की। उस समय तो साम्राज्य स्थापित करनेका उन्हें ध्यान भी नहीं था। किसने कम्पनीको सहायता दी? उनके रुपयोंको (रिश्वत-रूपमें) देख कर किसके मुँहमें पानी आ गया? उनके मालको किसने खरीदा? इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इतिहासमें वर्तमान है कि यह सब करतूतें हमीं लोगोंकी थीं। लक्ष्मीको अपनी चेरी बना-लेनेकी लालसासे हम लोगोंने कम्पनीके नौकरोंका स्वागत किया। हमींने उनकी सहायता की। यदि हमें नशा खानेकी आदत है और कोई नशा बेचनेवाला आता है और हम उससे नशा खरीदते हैं तो इसमें हमारा दोष है कि नशा बेचनेवालेका। क्या नशा बेचनेवालेको दोषी ठहरानेसे हम अपनी आदत छोड़ देंगे। और यदि एकको भगा भी दिया तो क्या दूसरा आकर उसके स्थान पर नहीं जमेगा। जो लोग भारतकी हृदयसे भलाई चाहते हैं उन्हें इन प्रश्नों पर आदिसे अन्त

तक विचार करना होगा । यदि अधिक भोजन किया जायगा तो अपचेकी सम्भावना रहेगी ही, फिर पानीको क्यों दोष दिया जाय । सच्चा तथा चतुर वैद्य वही है जो किसी बीमारीका वास्तविक कारण निकालनेका प्रयत्न करता है । यदि कोई भी भारतका सच्चा हितैषी है तो उसे इन बुराइयोंको तत्त्वतः देखना चाहिए ।

पा०——आपका कहना ठीक है । इस विषयकी चर्चाको समाप्त कीजिए । मैं इस विषयमें आपका पूर्णरूपसे मत जानना चाहता हूँ । इस समय हम लोगोंने एक गहन विषय उठा लिया है । मैं आपकी बातोंको अक्षरशः समझनेका प्रयत्न करूँगा और जहाँ कहीं समझमें नहीं आवेगा पुनः आपसे पूछूँगा ।

सम्पा०——पर आगे बढ़े कि मतभेद आरम्भ हुआ । पर कोई चिन्ताकी बात नहीं, केवल आपके टोकने पर मैं बहस करूँगा । इतना तो निश्चय है कि हमीं लोगोंके उत्साह दिलानेसे अँगरेजोंने भारतमें पैर जमाया । फिर क्या था, राजा लोग पारस्परिक युद्धमें कम्पनी बहादुरकी बेरोक-टोक सहायता लेने लगे। कम्पनी व्यवसाय तथा युद्ध दोनोंमें निपुण थी । सदाचार और नीतिका तो उसे कोई विचार नहीं था । उसका मन्तव्य केवल व्यवसाय बढ़ाकर रुपया कमाना था । हम लोगोंसे सहायता पा-

पा कर उसने अपने कारखाने और भी बढ़ाये। उनकी रक्षाके लिए उसने सैन्यबल भी रक्खा, जिसका उपयोग हम लोग भी यथा-समय करते थे। यह सब हम लोगोंकी करनीका फल है। इसके लिए अँगरेजोंको या और किसीको दोष देना व्यर्थ है। हिन्दू-मुसल्मानोंमें घोर वैमनस्य था। इससे भी कम्पनीको अवसर मिलता गया। और इन्हीं अवसरोंसे लाभ उठा कर कम्पनीने भारत पर अपना सिक्का जमाया। कहना तो यह चाहिए कि हम लोगोंने भारतको कम्पनीके हाथमें सौंप दिया।

पा०—अब थोड़ा यह भी बतलाइए कि भारत अभी तक उनके हाथमें कैसे है।

सम्पा०—जिन कारणोंसे भारत उनके फन्देमें फँसा उन्हींके कारण अब तक वह उनके अधिकारमें पड़ा है। कुछ अँगरेजोंका मत है कि भारत पर बलात् अधिकार किया गया है और शस्त्र-शक्तिकी बदौलत उस पर अब तक उनका अधिकार बना हुआ है। पर यह भावना सर्वथा गल्त है। भारत पर तल्वारके बल कभी भी अधिकार नहीं किया जा सकता। उनको स्वयं हम लोग रक्खे हुए हैं। नेपोलियनने अँगरेजोंको दूकानदारकी उपमा दी थी। और यदि वास्तवमें देखा जाय तो यह सच भी है। जहाँ कहीं ये गये, केवल व्यवसायके खयालसे

गये। सैन्यबल आदि भी व्यवसायकी रक्षाके लिए ही रक्खा जाता है। ट्रान्सवालमें व्यवसायकी सुविधा तथा लाभ न देख-कर प्रधान-मन्त्री मि० ग्लैडस्टनने उस पर अधिकार जमाना निःस्वत्व बतलाया था। पर जब वहाँ भी व्यवसायसे लाभ होने लगा तो विरोध खड़ा हो गया और युद्ध आरम्भ हो गया। अब मि० चॅम्बरलेन मुँह खोल कर कहने लगे कि इंग्लैंडका ट्रान्सवाल पर पुराना आधिपत्य है। कहावत है कि एक समय किसीने कर्जन महोदयसे पूछा था कि चन्द्रमामें सुवर्ण है या नहीं। उन्होंने उत्तर दिया 'नहीं'। उसने पुनः पूछा—यह आप कैसे जानते हैं। उत्तर मिला—यदि इसकी जरा भी सम्भावना होती तो अँगरेज लोग बिना उस पर अधिकार किये न रहते। कितनी समस्याएँ केवल इतनेसे हल हो जाती हैं कि रुपया ही उनका आराध्य देव है। इससे सिद्ध होता है कि केवल स्वार्थसे हम लोग अँगरेजोंको भारतमें टिकाये हुए हैं। उनके माल हमें पसन्द हैं, तरह तरहकी फैन्सी वस्तुओंसे हमें ललचा कर वे लोग मनमाना लाभ उठाते हैं। यदि ये बातें स्वीकार कर ली जायँ तो स्पष्ट है कि अँगरेज लोग यहाँ केवल व्यवसायके अभिप्रायसे आये और इसी लिए टिके भी हैं और हम लोग लगातार उनको सहायता करते जा रहे हैं। नहीं तो

शस्त्रसे ही वे लोग अब तक न अड़े रह जाते । जापानमें जापानी झण्डा न फहरा कर अँगरेजी झण्डा फहरा रहा है। उन लोगोंने जापानियोंसे व्यावसायिक सन्धि कर रक्खी है और वे वहाँ भी अपने व्यवसायको फैलानेकी ताकमें लगे रहते हैं। संसार भरके हाटोंमें वे अपना ही माल देखना चाहते हैं। पर वे ऐसा कर नहीं पाते। इसमें भी उनका दोष नहीं है। अपनी प्रयोजन-सिद्धिके लिए वे कोई भी काम कर सकते हैं।

आठवाँ अध्याय।

भारतकी स्थिति।

पा०—यह बात तो अब दिलमें ठीक जम गई कि भारत पर विदेशियोंका अधिकार केवल हमीं लोगोंके कारण है। अब मैं कुछ भारतकी स्थितिके सम्बन्धमें भी जानना चाहता हूँ।

सम्पा०—इस समय देशकी स्थिति बड़ी ही खराब हो रही है। उसकी हीन दशाका स्मरण करते हुए आँखोंमें आँसू आ जाते हैं और गला रुँध जाता है। मेरी समझमें उसकी जो स्थिति है, कदाचित् उसका सविस्तर वर्णन भी मैं नहीं कर सकूँगा। मेरी भावना तो यह है कि आधुनिक सभ्यतासे भारतकी जितनी क्षति हो रही है उतनी अँगरेजोंकी स्थितिसे नहीं हो रही है। उस पर इसका इतना अधिक भार है कि वह दम तक नहीं ले सकता। अब भी उसके बचानेका समय है, पर इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता है। दिन प्रति दिन कठि-

नाई बढ़ती ही जा रही है। भारतीयोंको धर्म अतीव प्यारा है, पर दुःख है कि हम लोग प्रति दिन अधर्मी हुए चले जा रहे हैं। मेरा अभिप्राय किसी धर्म-विशेषसे नहीं है, बल्कि मेरे कहनेका यह तात्पर्य है कि हम लोग ईश्वरसे ही मुख मोड़े जा रहे हैं।

पाठ०—यह कैसे ?

सम्पा०—हम लोगों पर दोष लगाया जाता है कि हम लोग आलसी हैं और यूरोपवाले मिहनती तथा उत्साही हैं। हम लोगोंने इसे सत्य भी मान लिया है। इस लिए हम लोग इस हालतसे अपनी इस दशाको बदलना चाहते हैं। सनातन-धर्म, इस्लाम तथा ईसाई-धर्म प्रायः सभी यही शिक्षा देते हैं कि मनुष्यको सांसारिक विषयोंकी तरफ कम झुकना चाहिए और धार्मिक विषयोंकी तरफ अधिक।

पा०—अर्थात् आपके कहनेका यह मतलब है कि हम लोगोंमें धर्म-तृष्णा अधिक आ जानी चाहिए। इसी तरहकी बातें बना कर कितनोंने लोगोंका सर्वस्व हर लिया है।

सम्पा०—यह धर्म पर बुरा आक्षेप है। सभी धर्मोंमें चाल-बाज होते हैं। दियाके तले ही अन्धेरा होता है। पर सांसारिक विषयोंमें जितनी चालबाजी होती है धार्मिक विषयमें

उससे कहीं कम ही होती है। जो चालें सांसारिक कामोंमें चली जाती हैं धर्ममें उनका नाम भी नहीं सुननेमें आवेगा।

पा०—यह आप कैसे कह सकते हैं। धर्महीके नाम पर हिन्दू और मुसल्मान प्रति दिन लड़ा करते हैं। उसीके नाम पर ईसाइयोंमें घमासान लड़ाई हुई थी। हजारों बे-गुनाहोंकी जानें गई थीं। कितने लोग धर्मके नाम पर जिन्दे जला दिये गये थे। यह कैसी सभ्यता है!

सम्पा०—पर मेरी समझमें तो ये बातें 'सभ्यताकी' कठोरतासे कहीं सरल हैं; क्योंकि यद्यपि इनके माथे पर धर्मका टीका लगा है, पर धर्मसे इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। और इनका रहना तभी तक सम्भव है जब तक हम लोगोंमें शिक्षाका प्रचार नहीं होता। पर सभ्यताका विष तो फैलता ही जायगा। इसकी शीतलताके धोखेमें पड़ कर लाखों इसके शिकार बनते हैं। उनका धर्म-कर्म भी नष्ट हो जाता है और संसारमें उन्हें शान्ति नहीं मिलती। यह सभ्यता बिल्कुल चूहेके जैसी है जो देखनेमें सीधा-सादा और अच्छा मालूम पड़ता है, पर वस्तुओंको काट कर बड़ी क्षति पहुँचाता है। जिस समय इसके अस्तित्वको जान लोगे, उस समय विदित होगा कि धार्मिक विश्वाससे इसके बनिस्बत कितनी कम क्षति होती है।

पाठ०—आपके कथनसे तो विदित होता है विलायतकी छाया हम लोगों पर व्यर्थका बोझा है।

सम्पा०—उससे कोई लाभ हम लोगोंको नहीं हुआ है। कहीं भी शान्तिके चिन्ह नहीं दिखलाई देते।

पाठ०—कदाचित् आपको स्मरण नहीं है कि ठगों, कोल-भीलों तथा पिण्डारियोंने इस देशको किस तरह सता रक्खा था।

सम्पा०—पर यदि आप विचार कर देखें तो आपको विदित होगा कि उनसे कोई विशेष कष्ट नहीं थे। यदि इनका अत्याचार अति भीषण रहा होता तो अँगरेजोंके आनेके पूर्व ही भारत गारद हो गया होता। यह वर्तमान शान्ति भी चिरस्थायी नहीं है। इसने हम लोगोंको बुजदिल और नामर्द बना दिया है। अँगरेजोंने भी कोई भील-पिण्डारियोंकी प्रकृति नहीं बदल दी है। मेरी तो यही धारणा है कि इस तरह दूसरोंकी शरणमें रह कर बुजदिल बने रहनेसे तो पिण्डारियोंका अत्याचार सहना ही अच्छा था। स्त्रियोंकी भाँति घरमें छिप कर सुरक्षित रहनेके बनिस्बत भीलोंका सामना कर मर जाना ही अच्छा है। जब तक अँगरेजोंकी छाया इस अभागी भारत-भूमि पर नहीं पड़ी थी यह वीर-प्रसविनी कहलाती थी। वीरोंसे भरी थी। भारतवासियोंको बुजदिल कह कर मेकालेने घोर

अज्ञानताका परिचय दिया था। हम लोग कभी बुजदिल थे ही नहीं। जंगली तथा पहाड़ी हिंसक पशुओंसे भरे देशमें कायर लोग कितने दिन तक अपनी रक्षा कर सकते थे। क्या कभी आपने किसानोंकी झोपड़ीकी सैर की है। जिस निर्भीकताके साथ हमारे किसान अपने खेतोंमें आज भी सोते हैं, आप देख कर चकित हो जायँगे, और अँगरेज या उनके बड़े भी उस तरह सोनेका साहस नहीं करेंगे। शक्ति किसे कहते हैं। मांस तथा मज्जासे लदे हुए शरीरवाला शक्तिशाली नहीं कहलाता। भय-रहित होना ही शक्तिके प्रधान लक्षण हैं। कमसे कम स्वराज्यवादियोंसे एक बात कहना है। आप भारतके लिए स्वराज्य चाहते हैं। ये कोल, भील, आसामी तथा पिण्डारी भी भारतके अंग हैं। इनको ठीक कर सीधे मार्ग पर लाना भी हमीं लोगोंका काम है। जब भाई-बिरादरोंका ही डर है तो स्वराज्य लेकर क्या होगा।

नवाँ अध्याय ।

भारतकी स्थिति—रेलें ।

पाठ०—भारतमें शान्तिका जो मैं स्वप्न देख रहा था उसे तो आपने भंग कर दिया ।

सम्पा०—अभी तो मैंने केवल धार्मिक प्रसंगकी चर्चा की है । यदि मैं भारतकी दरिद्रताका दिग्दर्शन कराने लगूँ तो आप मुझसे घृणा करने लग जायँगे । क्योंकि जिन बातोंको हम लोगोंने भारतकी भलाईके लिए समझ रक्खा था, वह एकदम विपरीत निकला ।

पाठ०—वह क्या चीज है ।

सम्पाद०—रेल, तथा डाक्टरोंने भारतको लूट कर कङ्गाल बना दिया है, इन सबोंने यहाँ तक खसोटना आरम्भ किया है कि यदि हम लोग समय रहते सँभल न जायँगे तो मिट्टीमें मिल जायँगे ।

पाठ०—सन्देह है कि हममें तथा आपमें यहाँसे मतभेद आरंभ होगा। जिन बातोंसे हम लोगोंको अगणित लाभ हुआ है उन्हींकी आप निन्दा कर रहे हैं।

सम्पा०—जरा एकाग्र-चित्त होकर सोचिए। सभ्यताकी बुराइयाँ कठिनतासे समझमें आवेंगी। रोगी मर रहा है, जीनेकी आशा नहीं है, पर डाक्टर साहब आशा देते चले जा रहे हैं। क्षयरोगकी झलक सहसा नहीं दीख पड़ती। किसी किसी हालतमें तो बीमारी बढ़ते रहने पर भी रोगीकी अवस्था देखनेमें अच्छी विदित होती है। रोगीका चेहरा दमकने लगता है, जिससे लोगोंको विश्वास हो जाता है कि उसकी दशा उत्तरोत्तर अच्छी हो रही है। यही दशा आधुनिक सभ्यताकी है। जानते हैं हमें कितना होशियार होकर रहना है।

पाठ०—पहले यह बतलाइए कि रेलोंसे हम लोगोंको क्या हानि पहुँची है।

सम्पा०—इतना तो आप अवश्य स्वीकार करेंगे कि यदि रेलें न होतीं तो अँगरेजोंका पञ्जा भारत पर इतना चपक कर नहीं बैठ सकता था। प्लेगके फैलनेका एक मात्र कारण रेलें हैं। यदि रेलें न होतीं तो सर्व-साधारणका स्थानान्तर इतना सहजमें न होता। इसीके द्वारा प्लेगके कीड़े फैलते हैं। प्राचीन

समयमें असामयिक मृत्यु नहीं होती थी। रेलोंके समयसे ही अकाल इतना अधिक होने लगा है। स्थानान्तरकी सुविधा होनेसे लोग अपना सारा गल्ला बेच देते हैं और वह जाते जाते खूब मँहगा हो जाता है। लोग लापरवाह भी हो जाते हैं। यही अकालके अधिकताका कारण है। तीर्थस्थानोंकी भी दुर्गति हो रही है। पहले यात्रा करनेमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता था। इस लिए सच्चे धार्मिक ही वहाँ तक जानेका साहस करते थे। पर अब तो तीर्थक्षेत्र भी बदमाशोंके अड्डे हो रहे हैं।

पाठ०—आपने पक्षपातसे एक-तर्फा डिग्री दी है। इन स्थानों पर अच्छे बुरे सभी जा सकते हैं। तो फिर अच्छे ही लोग रेलोंका लाभ क्यों नहीं उठाते।

सम्पा०—धर्मकी गति मन्द है। इस कारण रेलें उसके लिए लाभकारी नहीं हो सकतीं। धार्मिक लोग स्वार्थी नहीं होते, अतः उनमें उतावलापन भी नहीं होता। वे समझते हैं कि धर्मभाव फैलानेमें समय लगता है। पापके पर होते हैं। वह उड़ कर फैलनेवाला है। मकान बनानेमें समय लगता है। पर उसका बिगाड़ना सहज है। इसी तरह रेलोंसे बुराई विशेष फैल सकती है। अकालका मुख्य कारण रेलें हैं या नहीं इस

पर विचार किया जा सकता है, पर यह तो निस्संदेह और सर्व-सम्मत है कि रेलोंसे हमारे देशमें बड़ी बुराइयाँ फैली हैं।

पाठ०—आपकी सभी बातें ठीक मान ली जायँ तो भी रेलोंसे इतना अधिक लाभ हुआ है कि वह बुराईके पलड़ेको दबा देता है। भारतमें जातीयताके भावोंकी जागृति रेलों द्वारा ही हुई है।

सम्पा०—यह भी भ्रम है। अँगरेजी शिक्षाने हम लोगोंको बहकाया है कि हम लोगोंमें जातीयता नहीं थी और उसके भावोंको आनेके लिए अभी सैकड़ों वर्षोंकी आवश्यकता है। इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है कि हममें पहले जातीय भाव नहीं थे। अँगरेजोंके चरण-स्पर्शके पहले भी इस देशमें एक जातीयता थी। एक ही भावसे हम सब प्रेरित थे। हम लोगोंका एक ही प्रकारका जीवन था। हम लोगोंमें जातीयता होनेसे ही हमारे पूर्वज एक साम्राज्य स्थापित कर सके थे। बादको अँगरेजोंने आकर हमें विभक्त किया; हममें मतभेद डाला।

पाठ०—इस बातको जरा स्पष्ट करके कहिए।

सम्पा०—मेरा कहना यह है कि हम सब पहले जातीयतामें बद्ध थे। इससे मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि हम लोगोंमें मतभेद था ही नहीं। कहनेका तात्पर्य यह है कि हम लोगोंके नेता उस समय पैदल अथवा रथों पर देश-देशकी यात्रा कर सब

भाषाओंके सीखते थे। उनमें किसी तरहकी उदासीनता नहीं थी। तीर्थस्थानोंको इतने दूर दूर बनानेका क्या प्रयोजन था। क्या सेतुबन्ध रामेश्वर, जगन्नाथ तथा बद्रीनाथ एक ही स्थानमें नहीं रह सकते थे। वे लोग मूर्ख नहीं थे। वे जानते थे कि मनचंगा तो कठौतमें गङ्गा। उनका कथन था कि ईश्वरने भारतको एक देश बनाया है। वे लोग अपने प्रयाससे भी उसे उसी तरह रखना चाहते थे। इसी खयालसे वे लोग भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न धर्मक्षेत्र बना कर धर्मके मिस लोगोंमें जो जातीयताका भाव पैदा कर सके वे संसारमें कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकते। दो भारतीयोंमें जो प्रेमभाव रहता है वह दो अँगरेजोंमें कदापि नहीं पाया जा सकता। इस समय उन लोगोंमें जो भेदभाव आ गया है वह केवल आधुनिक सभ्यताकी बू है। केवल रेलोंके जारी होनेके बादसे ही हम लोग एक दूसरेको पृथक् समझने लगे। पर आप उलटा ही समझ रहे हैं कि रेलों द्वारा ही जातीयताके भाव उदित हुए हैं। अफीमची अफीमकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करता है। क्योंकि खाने पर उसे उसके दोष विदित हो जाते हैं। रेलके बारेमें जो कुछ मैंने कहा है उस पर विचार कीजिए।

पाठ०—अवश्य। एक सन्देह मेरे मनमें फिर भी उठता है। आपने भारतकी जिस दशाका दिग्दर्शन कराया है वह

मुसल्मानोंके पूर्वका भारत था। अब तो हिन्दू, मुसल्मान, पारसी, ईसाई आदि सभी भारतमें बस रहे हैं। अब उनमें एक-जातीयताके भाव कैसे हो सकते हैं। हिन्दू-मुसल्मानोंमें आजन्मकी शत्रुता है। दोनोंमें इतना विषम मतभेद है कि एक पूरब मुँह पूजा-पाठ करता है तो दूसरा पश्चिम। मुसल्मान लोग हिन्दूको 'काफिर' (मूर्ति-पूजक) कह कर गालियाँ देते हैं। वे गोहत्या करते हैं, हिन्दू उसे पूजते हैं। "अहिंसा परमो धर्मः" हिन्दुओंका मूलमन्त्र है, पर मुसल्मान इसके विरुद्ध हैं। अर्थात् पग पग पर मतभेद है, फिर इनमें जातीयताके एक भावका सञ्चार कैसे होगा।

दसवाँ अध्याय।

भारतकी स्थिति—हिन्दू और मुसलमान।

सम्पा०—आपका प्रश्न तो जटिल है पर विचार करने पर इसका उत्तर इतना कठिन नहीं प्रतीत होता। रेल, वकील तथा डाक्टरोंके प्रसंगमें यह प्रश्न उठ चुका है। हम लोगोंने रेलकी बातें तो देख लीं, अब वकील तथा डाक्टरोंकी दशा पर विचार करेंगे। यहाँ पर मैं एक बात प्रकट रूपसे कह देना चाहता हूँ कि परमेश्वरने मनुष्यमें एक शक्ति दी है जिसके अनुसार वह अपनी गतिका विस्तार उतना ही कर सकता है जितनी हाथ-पैर फैलानेकी उसमें शक्ति रहती है। यदि हम लोग रेलें अथवा इसी प्रकारके अन्य शीघ्रगामी यन्त्रों द्वारा इधर उधर अधिक भ्रमण न करें तो कितनी दिक्कतें रफा हो जायँ या उनके उठनेका अवसर ही न मिले। कठिनाइयोंको हम लोग स्वयं बनाते हैं। स्रष्टाने अनेक उपायोंसे मानसिक अभिलाषाओंको नियन्त्रित

करना चाहा। मनुष्य उनका उल्लङ्घन करनेका प्रयत्न करने लगा। परमेश्वरने केवल इस लिए बुद्धि दी थी कि उसके प्रयोगसे मनुष्य अपने स्वामीका ज्ञान प्राप्त कर सके। पर वह उसका दुरुपयोग कर स्वामीकोही भूलनेका प्रयत्न करने लगा। मेरी रचना इस तरहकी है कि मैं केवल अपने पड़ौसीकी सहायता कर सकूँ, पर मैंने अपनी बुद्धिको इतनी गति दी कि अब सारे संसारकी सहायता करनेका दावा कर रहा हूँ। इस प्रकार असम्भव वस्तुके पानेका प्रयास करनेमें मनुष्यको भिन्न प्रकृति, भिन्न मतका सहवास होता है और फिर उससे वह घबड़ा जाता है। इन उपर्युक्त बातोंसे भी विदित हो जायगा कि रेलें कितनी हानिकारक हैं। उनके द्वारा मनुष्यने अपने पिता, जगत्स्रष्टाको भी मात कर दिया।

पाठ०—पर पहले मेरे अन्तिम प्रश्नका उत्तर मिलना चाहिए। क्या इस्लामके प्रवेशसे जातीयताका बंधन ढीला नहीं पड़ गया है।

सम्पा०—केवल भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंके निवाससे ही भारतकी जातीयतामें कोई कमी नहीं आ सकती है। विदेशियोंका आना जातीयताका बाधक नहीं होता, बल्कि वे लोग भी उसीमें मिल-मिला जाते हैं। केवल उस देशमें दूसरोंको अप-

नेमें मिलानेकी शक्ति होनी चाहिए। भारत इसकी योग्यता रखता है। यदि देखा जाय तो भारतमें अनेकानेक पन्थ हैं, पर जिन्हें जातीयताका अभिमान है वे परस्परके धर्ममें विरोध नहीं दिखलाते। यदि मत-मतान्तरके झगड़े उठ खड़े हों तो वह देश पतित है। यदि हिन्दुओंको इस बातका अभिमान हो कि भारतमें केवल हिन्दू ही रहें तो यह उनका केवल सुख-स्वप्न है। भारतके प्रत्येक निवासी चाहे वह हिन्दू हो, मुसल्मान हो अथवा पारसी या ईसाई हो सभीको अपनी भलाईके लिए परस्पर मेल रखना होगा। धर्म तथा जातीयता ये दोनों एक शब्दार्थ नहीं हो सकते।

पाठक—पर हिन्दू तथा मुसल्मानोंकी स्वाभाविक शत्रुताके विषयमें आपका क्या कहना है।

सम्पा०—हमारे शत्रुओंने इस शब्दकी व्युत्पत्ति की है। यह शत्रुता केवल उस समय थी जब दोनोंमें परस्पर युद्ध हुआ करता था, पर वे दिन तो अब नहीं रहे। अब स्वाभाविक शत्रुताका प्रश्न उठ ही नहीं सकता। एक बात और स्मरण रखिए। केवल अँगरेजोंके आगमनके समयसे ही हम लोगोंका लड़ना बन्द नहीं हुआ है। मुसल्मान शासकोंके अधीन हिन्दुओंकी और हिन्दू शासकोंके अधीन मुसल्मानोंकी उत्तरोत्तर

बढ़ती होती रही है। तब दोनोंने समझ लिया था कि इस तरह लड़ना हानिकर है और अस्त्रके बलसे धर्म छुड़ाना कठिन है। इस लिए दोनोंने शान्त होकर रहना पसन्द किया। अँगरेजोंके आगमनके साथ ही यह कलह पुनः जागृत हो उठा।

आपका यह कथन उस समयका है जब दोनोंमें परस्पर शत्रुता था। अब तो वह बात नहीं है। कितने ही मुसल-मानोंके वंशज हिन्दू थे और उनकी नस-नसमें अब भी वही रक्त वर्तमान है। क्या केवल धर्म छोड़नेसे वे अपने भाईके शत्रु हो गये। क्या हिन्दू मुसल्मानोंके ईश्वर भी भिन्न भिन्न हैं। धर्म तो एक तरहकी विश्वास-रूपी धारा है जो दो मार्गसे होकर एक ही समुद्रमें गिरती है। यदि दोनोंका एक ही लक्ष्य है तो मार्गकी विभिन्नता हानिकर नहीं हो सकती। यहाँ तो कलहका कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

मुसल्मानोंकी बात तो न्यारी है। हिन्दुओंके ही शैव तथा वैष्णव दोनों सम्प्रदायोंको ले लीजिए। क्या उनमें परस्पर राग, द्वेष तथा वैमनस्य नहीं है। पर उनमें जातीयताके पृथक् भाव कोई नहीं बतलाता। सनातन वैदिक-धर्म तथा जैनधर्ममें बहुत विशेष अन्तर है, पर दोनों सम्प्रदायोंको कोई भी भिन्न जातीय-ताका नहीं बतलाता। असल बात यह है कि हम लोग दास-

ताकी बेड़ीमें बे-तरह जकड़े हैं, इसी लिए हम लोगोंमें द्वेषभाव है और आपसमें लड़ पड़ते हैं और उसके निर्णयका भार दूसरोंके सपुर्द करते हैं। हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंमें कुटीचर हैं। ज्ञानकी वृद्धिके साथ हम लोगोंको जान पड़ने लगता है कि अन्यमतावलम्बियोंके साथ द्वेषभाव रख कर विग्रह करना नितान्त मूर्खता है।

पाठक—गो-रक्षाके विषयमें भी मैं यहीं पर कुछ जान लेना चाहता हूँ।

सम्पा०—मुझमें भी गो-भक्ति है। गौको मैं श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता हूँ। भारतके उद्धारका भार गौ पर ही है। कृषि-प्रधान होनेके कारण गो-सन्तानों पर इसे बहुत कुछ निर्भर रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त और भी हजारों तरहसे यह उपयोगी है। कमसे कम इतना माननेके लिए तो मुसलमान भाई भी अवश्य तैयार होंगे।

पर जितनी भक्ति मुझे गौकी है उतनी ही श्रद्धा तथा प्रेम मुझे मनुष्यसे भी है। चाहे वह किसी भी सम्प्रदायका क्यों न हो—उसकी उपयोगिता गौसे कम नहीं है। ऐसी दशामें क्या गो-रक्षाके लिए मुसलमानोंसे लड़ना या उनकी हत्या करना उचित है। इससे तो हम दोनोंके शत्रु हो जाते हैं।

इस लिए ऐसा न कर उचित तो यह होगा कि हिन्दू लोग मुसल्मानोंके पास जाकर हाथ जोड़ कर उनसे प्रार्थना करें कि गौ-हत्या बन्द कर उनकी रक्षामें वे लोग भी हिन्दुओंका हाथ बँटावें। यदि वे लोग राजी नहीं होते तो हम लोगोंको अपनी अयोग्यता समझ कर गो-रक्षाका कार्य त्याग देना चाहिए। यदि गौओं पर हम लोगोंको अधिक दया है तो दूसरेकी जान न लेकर हमें अपनी ही जान देनी चाहिए। यही सनातन-धर्म है।

पर यदि जिद्द ही पड़ गई हो तो दूसरी बात है। ऐसी दशामें यदि हम एक राग छेड़ेंगे तो मुसल्मान भाई दूसरी राग छेड़ देंगे। पर यदि हम लोग उनका आदर करेंगे तो वे उसका बदला अवश्य चुकावेंगे। हम उन्हें सलाम करेंगे तो वे और भी नम्र होकर उसका उत्तर देंगे। यदि जवाबमें उन्होंने सलाम नहीं भी किया तो हम लोगोंकी प्रतिष्ठा नहीं घट जाती। गो-रक्षिणी सभाओंकी स्थापनाने गो-वध और भी बढ़ा दिया है। लज्जाकी बात है कि इस कामके लिए हमें सभायें स्थापित करनी पड़े। इससे तो यही विदित होता है कि हम लोग गो-रक्षाके साधन भूल गये।

रक्तका प्यासा कोई भाई गो-वध करने पर उतारू है। उस वख्त हमारा क्या धर्म है। उसे मार डालना चाहिए या

बिनती करे उसे उस कार्यसे रोकना चाहिए। मेरी समझसे तो अन्तिम उपाय ही लाभकारी प्रतीत होता है। इसीका प्रयोग हम लोगोंको मुसल्मानोंके साथ करना चाहिए।

क्या हिन्दू लोग गौओंके साथ दुर्व्यवहार नहीं करते। वहाँ पर उनकी कौन रक्षा करता है। बेचारा बैल चार मनका बोझ लिये चला जा रहा है, थक कर धीरे धीरे चलने लगा। यह देख उसके स्वामीने उसकी दण्डोंसे पूजा की। उस समय उनका सहायक कौन होता है। पर इससे तो जातीयतामें कोई भेदभाव नहीं उत्पन्न हुआ।

थोड़ी देरके लिए मान भी लिया जाय कि हिन्दू "अहिंसा परमो धर्मः" सूत्रको मानते हैं और मुसल्मान नहीं मानते तो इस समय हिन्दूका क्या धर्म है। यह कहीं नहीं लिखा है कि अहिंसा धर्मको माननेवाला उस मतके विरोधीकी हत्या कर डाले। उसका मार्ग तो साफ है। एककी रक्षा कर दूसरेकी हत्याका उसे कोई अधिकार नहीं है। केवल वह उसकी रक्षाके लिये विनती कर सकता है—अभयदान माँग सकता है। बस यही उसका धर्म है।

पर क्या अहिंसामें सभी हिन्दुओंको विश्वास है। यदि विवेचना की जाय तो ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं पाया जायगा

जो इस महामन्त्रका अनुसरण करता हो। हिंसासे मुक्ति पानेके लिए सनातन-धर्म है। तब तो जितने मांसाहारी हिंदू हैं अहिं-सा धर्मके उपासक नहीं कहे जा सकते। इस लिए यह कहना कि हिन्दू अहिंसा धर्मको मानते हैं और मुसलमान नहीं मानते, इस कारण दोनों एक साथ प्रेमभावमें नहीं रह सकते, निर्मूल है।

स्वार्थी तथा बनावटी धर्मात्माओंकी यह निर्मूल कल्पना है और अँगरेजोंने नमक-मिर्च लगा कर उसे और भी ठीक कर दिया। अँगरेजोंमें इतिहास लिखनेका उन्माद है। वे लोग संसारके प्रत्येक प्राणीके रस्म-रिवाज तथा रहन-सहनको जाँचते हैं। ईश्वरने हम लोगोंकी परिमित बुद्धि दी है, पर वे लोग ईश्वरका भी हाथ बँटानेको तैयार हैं। अपने आविष्कारोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा कर हम लोगोंको वे बहकाना चाहते हैं। हम लोग भी ऐसे मूर्ख हैं कि उन्हींको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं।

जो लोग भुलावेमें न पढ़ कर वस्तुतः ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें कुरानकी आयतें पढ़नी चाहिए। अनेक आयतें उसमें हिन्दुओंके अनुकूल मिलेंगी। भगवद्गीताहीको देखिए। उसमें अनेक बातें ऐसी हैं जो मुसलमानोंको भी मान्य हैं। कुरानकी आयतें या तो मेरी समझमें नहीं आतीं या मुझे पसन्द नहीं हैं, इससे क्या

मुझे मुसल्मानोंसे घृणा करना चाहिए। बिना दोनों हाथोंके ताली नहीं बजती। यदि मैं झगड़ा बचाना चाहता हूँ तो क्या कोई मुसल्मान यों ही आकर लड़ने लगेगा। यदि हवामें शस्त्र चलाया जाय तो केवल अस्त्रकी क्षति होगी। यदि दोनों आदमी अपने अपने धर्मके तत्त्वको समझ लें और उसीका अनुसरण करें और स्वार्थी पण्डितों तथा काजियोंकी बातें न सुनें तो झगड़ेकी जड़ ही मिट जाय।

पाठ०—तो क्या अँगरेज लोग कभी भी दोनोंमें मेल होने देंगे।

सम्पा०—यह प्रश्न केवल भीरुताका द्योतक है। इससे हमारे हृदयकी क्षुद्रताका बोध होता है। यदि दो भाई आपसमें मेल रखना चाहते हैं तो क्या तीसरा उनमें कभी भी कलह करा सकता है। यदि वे लोग बुरी सलाहों पर कान दें तो वे परले दर्जेके मूर्ख हैं। इसी तरह यदि अँगरेजोंके बहकानेसे हिन्दू और मुसलमान आपसमें लड़ जायँ तो मैं अँगरेजोंको दोष न देकर हिन्दू-मुसल्मानोंको ही मूर्ख कहूँगा। मिट्टीके कच्चे बरतन पर ढेला मारनेसे वह अवश्य फूट जायगा। एक बार बच भी जाय तो दूसरी बार नहीं बच सकता। उसकी रक्षाका क्या उपाय है। छिपा कर रखनेकी बनिस्बत उसे पका कर पक्का कर लेना ही अच्छा है। इसी तरहसे हमें अपने हृदयको पक्का करना

होगा। फिर भयकी कोई बात न रह जायगी। हिन्दू लोग इस कामको बड़ी आसानीसे कर सकते हैं। उनकी संख्या अधिक है, उनमें शिक्षा अधिक हैं, इस लिए, परस्परके बन्धनकी पतली रस्सीको सुरक्षित रखनेका अधिक भार उन पर ही है।

भेदभावके साथ साथ आपसमें विश्वास भी नहीं है। इसी-लिए मुसलमानोंने लार्ड मार्लेसे कुछ बातें अपने सुविधेकी माँगीं। हिन्दुओंने उसका विरोध क्यों किया। यदि हिन्दू लोग चुप रह गये होते तो अँगरेजोंको भी पता लग गया होता। मुसल-मानोंकी भी तबीयत भर गई होती और धीरे धीरे भ्रातृभाव बढ़ता जाता। अपने झगड़ेका निबटारा अँगरेजोंसे कराना लज्जा-स्पद है। यदि विचार कर देखिए तो चुप रहनेमें कोई विशेष क्षति नहीं है। दूसरोंके हृदयमें विश्वास तथा श्रद्धाके अंकुर उगानेमें किसीको भी हानि नहीं पहुँच सकती।

पर मेरे कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि हिन्दू और मुसल्मान लड़ेंगे ही नहीं। यदि दो भाई भी इकट्ठा रहते हैं तो उनमें खटपट हो ही जाया करती है। कभी कभी सिर-फुड़ौवल हो ही जाया करेगी, क्योंकि दोनों जातियोंमें एक ही तरहके लोग तो हैं नहीं। क्रोधमें आकर कितनी बेकूफीकी बातें हो जाती हैं। इन सबको सहना ही पड़ेगा। पर लड़ कर

चुप हो जाना चाहिए। फिर आदालत या वकीलोंकी शरण न लेनी चाहिए। दो आदमी लड़े। दोनोंने अपना सिर फोड़ डाला, या एकहीका फूटा। मेरी समझमें यह नहीं आता कि तीसरा आदमी उनके बीच क्या न्याय कर सकता है। यदि दो लड़ेंगे तो चोट खामखाह लगेगी ही, फिर न्यायालयकी क्या आवश्यकता।

ग्यारहवाँ अध्याय।

भारतकी स्थिति—वकील।

पाठ०—आपने अभी कहा है कि जब दो आदमी लड़ते हैं तो उन्हें न्यायालयमें नहीं जाना चाहिए। यह तो अंधेरकी बात है।

सम्पा०—आप इसे अन्धेर कहें या और कुछ, पर मैंने आपसे सच्ची सच्ची बातें कह दीं। अब मैं वकीलोंका प्रश्न उठाता हूँ। मुझे दृढ़ विश्वास है कि भारतकी दासताके जड़ वकील ही हैं। हिन्दू-मुसलमानोंके परस्पर वैमनस्यके भी यही लोग कारण हैं। और अँगरेजोंके अधिकार भी इन्हीं लोगोंकी बदौलत इतने सुदृढ़ हुए हैं।

पाठ०—कहनेको तो आपने इनके मत्थे इतने दोष मढ़ दिये, पर साबित करके बतलाना जरा कठिन होगा। यदि सचमुच पूछिए तो वकीलोंने ही स्वतंत्रताका रास्ता दिखलाया है, दीन-

दुखियोंकी रक्षा की है, गरीबोंको बचाया है। कांग्रेस—जिसकी आपने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है, वकीलोंकी ही जमाई है। इतने उपकारी लोगोंकी निन्दा करना अनर्थकारी है। वकीलोंकी निन्दा करके आप सारे वकील समाजको कलङ्कित कर रहे हैं।

सम्पादक०—किसी समय मेरा भी यही विश्वास था। मैं यह नहीं कहता कि उनके द्वारा देशको लाभ नहीं हुआ है। मनमोहन घोष आदिने कितने ही गरीबोंकी सहायता की है। कांग्रेस पर भी उनका बहुत कुछ ऋण है। भलाई करना मानुषिक प्रकृति है और वकील भी मनुष्य ही हैं। पर जो कुछ उपकार उन्होंने किया है वह मनुष्यताके सम्बन्धसे, न कि वकीलीकी हैसियतसे। मेरे यह सब कहनेका केवल यही अभिप्राय है कि यह पेशा मनुष्यके आचरणको पतित कर देता है—उसे कमीना बना देता है। इसमें बहकानेके इतने सामान हैं कि गिन-गिनाये अपनेको बचा सकते हैं।

हिन्दू, मुसलमान लड़े। साधारण आदमी यही कहेगा, जाने दो। भाई, भूलसे हो गया, आपसमें तय कर लो, आइन्देसे ऐसा मत करना। पर यदि वकीलके पास जाइए तो वह क्या कहेगा। वह अपने मुअक्किलका पक्ष ग्रहण करेगा। न जाने कहाँ कहाँकी बातें लाकर अपने मुअक्किलको बचाने तथा दूसरेको फँसा-

नेका प्रयत्न करेगा। यदि ऐसा न करें तो उनकी प्रतिष्ठा हम-पेशोंमें नहीं हो सकती। इस लिए लड़ाईको दबाना तो दूर रहा, वे लोग उसे बढ़ानेहीका प्रयत्न करेंगे। आजकल लोग वकालत क्यों पढ़ते हैं तथा दूसरोंको आपत्तिसे बचानेका उन्हें जरा भी ध्यान रहता है? कदापि नहीं। केवल रुपया कमाना ही उनका मुख्य उद्देश्य होता है। केवल रुपया कमानेके लिए ही वे वकालत पढ़ते हैं। इससे झगड़ोंको कम करना तो दूर रहा, वे उन्हें बढ़ाते ही जाते हैं। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि दो आदमियोंके लड़नेसे वे बहुत ही प्रसन्न होते हैं। मामूली वकील तो झगड़ा करवा देते हैं। उनके दलाल घूम-घूम कर लोगोंको फँसा कर उनका रक्त चूसनेकी चिन्तामें लगे रहते हैं। वकीलोंको संसारका बहुत काम नहीं करना है। आलसी, दूसरोंको लूट कर विलास चाहनेवाले ही इस पेशेको प्रिय समझते हैं। इसे सच मानिए। यों तो उसको सार्थक बनानेके लिए अनेक बातें कही जा सकती हैं। केवल वकीलोंने ही यह तत्त्व निकाला है कि इस पेशेमें बड़ी प्रतिष्ठा है। अपनी मतिके अनुसार वे नियम बनाते हैं, इच्छानुसार मेहनताना रखते हैं। बनावटपन उनमें इतना अधिक है कि बिचारे गरीब उनको ईश्वर समझने लगते हैं।

मजदूरोंसे अधिक महनताना वे लोग क्यों लेते हैं, उनकी आवश्यकतायें इतनी अधिक क्यों हैं । किस हैसियतसे वे मजदूरोंसे अधिक देशका उपकार करते हैं। क्या जिनसे अधिक उपकारकी सम्भावना हो उन्हें अधिक पुरस्कार मिलना चाहिए। यदि द्रव्यके प्रलोभनमें पड़ कर उन्होंने किसी तरह देशको लाभ पहुँचाया तो उसका एहसान ही क्या।

हिन्दू मुसल्मानोंके परस्पर विरोधकी जिसे भीतरी जानकारी है वह भली भाँति जानता है कि इसके कारण वकील लोग ही हैं। इनकी कृपासे कितने वंश रसातल चले गये। भाई-भाईमें इन लोगोंने वैमनस्य करा दिया। कितनी रियासतें इनके हाथमें पड़ कर बरबाद हो गईं। एक नहीं इनके अनेकों उदाहरण मिल सकते हैं।

पर सबसे बुरा काम जो उन लोगोंने भारतके लिए किया है वह यह है कि उन्हींकी कृपासे भारत पर अँगरेजोंका पञ्जा चपक कर बैठ गया। क्या तुम समझते हो कि इन अदालतोंके बिना सरकार एक मिनटके लिए भी शासन कर सकती है। यह समझना भूल है कि इन अदालतोंसे रियायाको किसी तरहका लाभ पहुँच सकता है। यह केवल अधिकार दृढ़ करनेका

एक उपाय है। यदि हम तुम अपना झगड़ा आपसमें ही निपटा लें तो किसी तीसरे व्यक्तिको अपना रोब जमानेकी क्या जरूरत पड़े। जब लोग आपसके झगड़ेको लड़ कर या सम्बन्धियों-को बीचमें मध्यस्थ बना कर तय कर लेते थे उस समय लोगोंमें मनुष्यत्वकी मात्रा अधिक थी। युद्ध द्वारा अपने कलहको तय करनेको बर्बरता, असभ्यता, दासता अथवा जंगलीपन कहा जाता है। पर क्या दूसरोंके सहारे न्याय पानेके लिए रहना सभ्यता-की निशानी है। भला तीसरा व्यक्ति कब न्याय कर सकता है। यह केवल हम लोगोंकी मूर्खता है जो हम लोग यह समझे हुए हैं कि तीसरा व्यक्ति रुपया लेकर हम लोगोंका झगड़ा तय कर देगा।

बिना वकीलोंके अदालतोंकी स्थिति क्या हो सकती थी। वकीलोंके बिना अदालतें नहीं चल सकती थीं और अदालतोंके बिना इनका शासन नहीं ठहर सकता था। पर यह कहा जा सकता है कि यदि हिन्दुस्तानी इस तरह उनका साथ न देते तो वे सब आहेदों पर अँगरेजोंहीको रखते। ठीक है, ऐसा किया जा सकता था, पर अँगरेज जज, अँगरेज वकील और अँगरेज पुलिस केवल अँगरेजों पर शासन कर सकती है। बिना हिन्दु-स्तानियोंके उनका एक मिनट भी नहीं चल सकता था। पहले जमानेमें किस किस तरहकी शिफारिस तथा पुरस्कार देकर

लोगोंको अँगरेजी पढ़ने तथा वकील बननेके लिए तैयार किया जाता था, यह जाननेकी बात है। इसको जान कर आपको भी मेरी भाँति इस पेशेसे घृणा हो जायगी। यदि आज भारतके सभी वकील रण्डियोंके पेशेकी तरह इस पेशेको घृणित समझ कर त्याग दें तो मैं दावेसे कह सकता, हूँ कि कल ही अँगरेजोंके शासनका अन्त हो जाय। हम लोगों पर जो कलह-प्रिय होनेका दोष लगाया जाता है उसके कारण यही वकील लोग हैं। यही बातें जजोंके बारेमें भी सही हैं। इनको भी उनका भाई समझिए। ये लोग एक दूसरेके परस्पर सहायक हैं।

बारहवाँ परिच्छेद ।

भारतकी स्थिति—डाक्टर लोग ।

पाठ०—हाँ अब मेरी समझमें आया कि वकीलोंकी कैसी दशा है । उनसे देशका लाभ होना कठिन है । यह पेशा बहुत ही घृणित है । पर वकीलोंके साथ आप डाक्टरोंको क्यों घसीटते हैं ।

सम्पा०—जो मत मैंने प्रकट किया है वह पूर्ण विचारके बाद किया है । और यह दूसरोंके मतसे लिया गया है, कोई मेरा निजका ही मत नहीं है । पश्चिमी लेखकोंने इन्हें और भी घृणित बतलाया है । किसी समय मुझे भी डाक्टरीसे बड़ा प्रेम था । देश-सेवाके खयालसे मैं भी डाक्टरी ही पास करनेवाला था । पर अब मुझे वह प्रेम नहीं रहा । और धीरे धीरे मुझे मालूम हो गया कि वैद्योंकी इतनी प्रतिष्ठा क्यों नहीं होती ।

इससे भी अँगरेजोंको लाभ ही हुआ है। कितने अँगरेजी डाक्टरोंने देशी राजाओंकी दवा कर राजनैतिक लाभ उठाया है।

डाक्टरोंने हम लोगोंको अपाहिज बना दिया है। देखिए डाक्टरका काम है शरीरकी रक्षा करना, उसकी देखरेख करना। या यों कहिए अनेक तरहकी बीमारियोंसे शरीरको मुक्त करना। बीमारियोंका कारण हम लोगोंकी लापरवाही है। मान लीजिए कि मैंने आज ज्यादा भोजन कर लिया। मुझे अपचा हो गया। मैं दौड़ा दौड़ा डाक्टरके पास गया। उसने दवा दे दी। मैं अच्छा हो गया। दूसरी बार मैंने पुनः अधिक भोजन कर लिया और अपचा हो गया। डाक्टरने पुनः पाचनकी गोली देकर मुझे आराम कर दिया। यदि डाक्टर साहबने मुझे पाचक गोलियाँ पहले ही बार न दी होती तो मैं अपनी करनीका फल भुगत कर सदाके लिए होशियार हो गया होता और फिर अधिक खानेका नाम नहीं लेता। डाक्टरने अधिक भोजन करनेमें मेरी सहायता की। शरीरको आनन्द मिला, पर मनकी शक्ति कम जोर पड़ गई। अर्थात् दवाइयोंका जितना प्रयोग होगा उतना ही इन्द्रियों परसे अपना अधिकार उठता जायगा। वे विवश होती जायँगी।

मैंने कोई बुरा काम किया। उससे बीमारी उत्पन्न हो गई। डाक्टरने दवा करके मुझे आराम किया। इसके माने यह है कि उसने मेरे बुरे कर्ममें सहायता दी; क्योंकि मैं यह जान कर कि डाक्टर आराम तो कर ही देगा उसे और भी करूँगा। यदि डाक्टरका हाथ न लगा होता तो मैं अपने किये कर्मका फल भुगतता और अच्छा होने पर उस कामसे मुँह मोड़ लेता।

अस्पतालोंको पाप-गृह कहना चाहिए। मनुष्य अपने शरीरकी परवाह नहीं करता और व्यभिचार बढ़ने लगता है। यूरोपीय डाक्टर तो सबसे गये गुजरे हैं। मनुष्यको भला पहुँचानेके भ्रममें वे प्रति वर्ष लाखों जीवोंकी जान लेते हैं। अपने आविष्कारोंके प्रयोग वे बेचारे जानवरों पर करते हैं। कोई धर्म यह शिक्षा नहीं देता—मनुष्यके लिए इतने जीवोंकी हत्या करना धर्म नहीं सिखलाता।

डाक्टर लोग धर्मके भी घातक हैं। उनकी दवाएँ मांस तथा मदिरासे बनी रहती हैं। यह दोनों हिन्दू तथा मुसलमानको ग्राह्य नहीं हैं। हम लोग सभ्यताकी आड़में धार्मिक बन्धनोंको आडम्बर समझ कर चाहें जो करें, पर इतना अवश्य कहा जायगा कि इन सबोंके कारण डाक्टर हैं। उन्हींके आशीर्वादसे हम लोग शक्तिहीन होकर स्त्रियोंके जैसे हो गये हैं। इस

स्थितिमें हम लोग देश-सेवाके सर्वथा अयोग्य हैं। अँगरेजी प्रकारसे डाक्टरी पढ़ना तो दासताकी बेड़ीको और भी पुष्ट करना है।

यहाँ पर यह भी जान लेना चाहिए कि डाक्टरी पास करनेका आन्तरिक अभिप्राय क्या रहता है। कमसे कम लोक-सेवाके खयालसे तो कोई इसमें प्रवेश नहीं करता। केवल धन तथा प्रतिष्ठा कमानेके लिए ही यह पेशा उठाया जाता है। ऊपर मैंने यही दिखलानेका प्रयास किया है कि इनसे देशका कोई लाभ नहीं है, बल्कि उलटा हानि होती है। डाक्टर लोगोंको अपनी डाक्टरीका बड़ा अभिमान होता है। वे फीस अधिक लेते हैं। दवाओंका दाम इतना अधिक लेते हैं कि दमड़ीकी दवाके लिए चार पैसा लेंगे। रोगसे निर्मुक्त होनेकी आशामें लोग मुँहमाँगा देते हैं। तो क्या फिर भी डाक्टरोंको अच्छा ही कहा जायगा।

तेरहवाँ परिच्छेद।

वास्तविक सभ्यता।

पाठक—रेल, वकील तथा डाक्टरोंको तो आपने वाहियात बतलाया। मशीनोंको भी आप व्यर्थ कहेंगे। तब सभ्यताके क्या लक्षण हैं।

सम्पादक—इसका उत्तर तो सहजमें दिया जा सकता है। जिस सभ्यताका रस भारतने पीया है वह संसारसे कभी भी उठ नही सकती। हमारे पूर्वजोंने जिस सभ्यताका बीज बोया है उसकी बराबरी संसारकी कोई सभ्यता नहीं कर सकती। हम लोगोंके देखते देखते रोमका पतन हुआ, यूनानको रोमका साथ देना पड़ा, फरोहाकी शक्ति पद-दलित हुई, जापान पर पश्चिमी हवाका असर पड़ गया, चीनके बारेमें कुछ कहना ही नहीं है, पर हम अब भी जैसेके तैसे बने हैं। यूरोपवाले यूनान तथा रोमकी सभ्यतासे शिक्षा लेते हैं, पर उनका पता कहाँ है, न

तो अब रोमका ही उत्कर्ष रहा और न यूनानका। उनका अनुकरण करनेसे यूरोपवालोंकी यह भी भावना रहती है कि उनकी भूलें वे छोड़ते जायँगे। पर अनेक तरहके झकोरे खाने पर भी हमारा बूढ़ा भारत जैसाका तैसा है। क्या यह कम प्रशंसाकी बात है। हमारे देशकी निन्दा करनेवाले लोग कहते हैं कि यहाँके लोग इतने असभ्य, मूढ़ तथा कट्टर होते हैं कि उनकी स्थितिमें जल्दी परिवर्तन लाना कठिन है। यह दोष वास्तवमें दोष नहीं है, बल्कि हम लोगोंका गुण है। अनुभवसे जिनकी स्थिरता तथा सत्यताका ज्ञान हम लोगोंको हो चुका है उसको कैसे छोड़ा जा सकता है। कितने लोगोंने हम लोगोंको बहकानेका प्रयत्न किया, पर हम लोग वैसे ही दृढ़ बने हुए हैं। यही हम लोगोंके आशाकी दारमदार है।

कर्तव्य-पथ पर लेजानेवाले मार्गको सभ्यता कहते हैं। उसे चाहे आप कर्तव्य-पालन कहिए, चाहे सदाचार कहिए, दोनोंके एक ही अर्थ हैं। ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय पर विजय पाना ही सच्चा सदाचार है। इससे आत्माका ज्ञान होता है। सभ्यताके माने ही सद्व्यवहार है।

यदि उपर्युक्त परिभाषा ठीक मान ली जाय तो हमारे देशको विदेशियोंसे किसी प्रकारकी सभ्यता नहीं सीखनी है। प्रकृति

चञ्चल है। इसकी आकांक्षा बढ़ती ही जाती है। इसे कभी भी सन्तोष नहीं होता। इन्द्रियों परसे जितना अधिकार हटाते जाइए उतना ही अधिक वे स्वतन्त्र होना चाहेंगी। इस लिए पूर्वजोंने विलास-भोगकी सीमा बनादी है। उन्होंने देखा कि मानसिक प्रसन्नता ही सच्ची प्रसन्नता है। केवल धनी या निर्धन होनेसे कोई व्यक्ति प्रसन्न या दुखी नहीं हो सकता। सब कोई तो धनी हो नहीं सकते। इन्हीं बातोंको जान कर पूर्वजोंने हम लोगोंका मुँह भोगविलाससे मोड़नेको प्रयत्न किया।

जहाँ तक हो सका हम लोग भी उनका अनुकरण करते आये। हम लोग अब भी अधिक तर उसी तरहके मकानों (झोपड़ों) में रहते आये और हम लोगोंकी शिक्षाका भी वही प्राचीन क्रम बना है। स्पर्धाकी हम लोगोंमें कोई प्रथा नहीं थी। अपने अपने व्यवसायमें सब लोग रहते थे और नियमित मोहनताना ले लेते थे। यह बात नहीं थी कि वे लोग यन्त्रोंका आविष्कार करना नहीं जानते थे, पर जान-बूझ कर उन लोगोंने उस तरफसे मुँह मोड़ा था। वे लोग जानते थे कि उसके फेरमें पड़नेसे हम लोग दास और दुराचारी हो जायँगे। इस कारण उन लोगोंने केवल बाहु-बलका ही उपयोग कराना उचित समझा। और इसीमें हम लोग आरोग्य तथा प्रसन्न रह सकते हैं। उन लोगोंने यह भी देखा

कि बड़े बड़े शहरोंके बसानेमें बड़ा अनर्थ होगा। लोगों पर व्यर्थका भार पड़ेगा, लोगोंको अनेक प्रकारके प्रलोभन मिलेंगे, डाकू-चोरोंकी संख्या बढ़ जायगी, व्यभिचारकी मात्रा बढ़ जायगी, अनेक प्रकारकी बुराइयाँ फैलने लगेंगी और अमीर लोग गरीबोंका रक्त चूस डालेंगे। इसी लिए उन्होंने झोपड़ीही-को अच्छा समझा। उन लोगोंने यह भी देखा कि विद्यास्त्रके सामने राजबल तथा शस्त्रबलको सिर झुकाना पड़ता है, इस लिए उन लोगोंने साधु-महात्माओंकी तुलनामें इस संसारको तुच्छ माना। जिस राष्ट्रमें उपर्युक्त व्यवस्था थी वह दूसरोंको सिखा सकता है, दूसरे उसे क्या सिखलावेंगे। उस समय भी न्यायालय, वकील तथा डाक्टर थे, पर उनकी परिधि थी। प्रत्येक व्यक्ति जानता था कि यह पेशा अधिक प्रतिष्ठित नहीं है। इसके अतिरिक्त वे लोग ठगने तथा धोखा देनेका साहस नहीं रखते थे। कहनेका सारांश यह है कि ये लोग सर्व-साधा-रणसे बढ़कर नहीं थे। न्यायालयोंमें न्याय होता था। पर जहाँ तक हो सकता था अदालतकी शरण नहीं ली जाती थी। लोगोंको फँसा कर अदालतमें ले जानेके लिए आजकलकी भाँति दलाल नहीं घूमा करते थे। हाँ ये सब दोष राजधानियोंके आस-

पास अवश्य दृष्टिगोचर हो जाते थे। जनता पूर्ण स्वतन्त्रतासे कृषि-कार्यमें लगी रहती थी। उस समय भारतमें स्वराज्य था।

जहाँ कहीं इस चाण्डालिन आधुनिक सभ्यताने अपना सिक्का नहीं जमाया है वहाँ अब भी वही हाल है। वे लोग आप लोगोंकी बातें सुन सुन कर हँसेंगे। उन पर अँगरेजोंका शासन नहीं है। आपसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। जिनको देशभक्ति है उन्हें उन प्रान्तोंमें जाकर वर्ष, ६ मास रहना चाहिए, जहाँ रेल भवानीकी सवारी अब तक नहीं पहुँची है। वहाँ रहने पर आपको स्वराज्यके तत्त्वका बोध होगा।

इसीको मैं वास्तविक सभ्यता कहता हूँ। जो लोग इस देश-की प्राचीन स्थितिको उलट फेर कर बदलना चाहते हैं उनको देशका कट्टर शत्रु तथा पापात्मा समझना चाहिए।

पाठक—जिस दशाका आपने वर्णन किया है यदि वह आज भारतमें वर्तमान होती तो क्या पूछना था। पर आजकल यहाँकी क्या दशा है। लाखों बाल-विधवायें पड़ी हैं, दो वर्षके अबोध बालक शादीके बन्धनोंमे जकड़ दिये जाते हैं, बारह वर्षकी बालिकायें माता होकर गृहस्थीका बोझ सँभाल रही हैं, पुनर्विवाह करती हैं, नियोगकी प्रथा जारी है, धर्मके नाम पर स्त्रियाँ वेश्या बनाई जाती हैं और लाखों जीव

देवी-देवताओंके लिए बलि चढ़ते हैं। क्या ये सब उसी प्राचीन सभ्यताके अंग हैं?

सम्पादक—यही तो हम लोगोंकी भूल है। ये हम लोगोंमें दोष हैं। इनको सभ्यताका नाम कौन दे सकता है। इनको मिटानेका सर्वदा प्रयत्न होता आया है, पर उनका उठ जाना कठिन है। इस नई शक्तिका उपयोग हम लोगोंको उनके दूर करनेकी चेष्टामें करना चाहिए। पूर्णता तो किसी कालमें किसी देशकी सभ्यतामें नहीं आ सकती। पर पूर्वीय तथा पश्चिमीय सभ्यतामें केवल इतना भेदभाव है कि पूर्वीय सभ्यता सदाचारकी शिक्षा देती है और पश्चिमीय सभ्यता दुराचारका पाठ पढ़ाती है। इन बातों पर पूर्ण विचार कर यदि देशकी उन्नति हृदयसे चाहते हैं तो हम लोगोंको गुड़-चींटेकी तरह प्राचीन सभ्यताको अपनाना चाहिए। इसीमें हम लोगोंका कल्याण है।

चौदहवाँ परिच्छेद ।

भारतको स्वतन्त्र होनेके मार्ग ।

पाठक—सभ्यताका जो ज्ञान आपने दिया है वह ठीक प्रतीत होता है। पर मैं विचार किये बिना सबको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं हूँ। आपहीके विचार मान लेने पर भारतको निर्मुक्त करनेके क्या उपाय हो सकते हैं।

सम्पादक—मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि आप मेरे कथनको ठीक मान लें। जो कुछ मैं कहता हूँ उसे सुनिए, उस पर विचार कीजिए; और उचित प्रतीत हो तो लोगोंमें उसका प्रचार कीजिए। भारतको स्वतन्त्र होनेके कारण तो हम ऊपर बतला आये हैं, पर वह घुमा-फिरा कर कहा गया था। अब मैं सीधे शब्दोंमें उसे बतलानेका प्रयास करूँगा। यह बात सिद्ध है कि यदि कारण मिटा दीये जायँ तो कार्यका भी वहींसे अन्त हो

जायगा। इसी तरह यदि भारतकी दासताके कारण मिटा दिये जायँ तो वह आज स्वतन्त्र हो सकता है।

पाठक—आपने अभी कहा है कि हमारी सभ्यता सबसे अच्छी है तो दासताकी बू उसमें कहाँसे आई।

सम्पादक—इसकी उत्कृष्टता सर्व-मान्य है, पर सभी सभ्यताको कसौटीकी रगड़ खानी पड़ी है; और जिसने अपना रंग नहीं बदला उसी सभ्यताने संसारकी सारी सभ्यताओं पर विजय लाभ की है। हम लोगोंकी अयोग्यतासे हमारी सभ्यता लाञ्छनीय हो गई है। पर इसकी तारीफ इसीमें है कि वह इस लाञ्छनाको सह कर पुनः जैसीकी तैसी हो जायगी। इसके अतिरिक्त सारे देशमें लाञ्छना नहीं लग गई है। केवल वे लोग हीन हो गये हैं जिनको पश्चिमी सभ्यताकी हवा लग गई है। हम लोग अपनी आँखसे सारे संसारको देखते हैं। 'आप डूबे तो जग डूबा' की कहावत हम लोगों पर ठीक घटती है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। पर समूचे भारतको दासताकी बेड़ीमें जकड़ा हुआ समझ लेना ही ठीक होगा। इसका फल यह होगा कि मेरे उद्धारके साथ साथ भारतका भी उद्धार हो-जायगा। और यही स्वराज्यकी परिभाषा है। अपना प्रबन्ध आप कर लेना ही स्वराज्य है। अर्थात् स्वराज्य अपनी मुट्ठीमें

है । इसको स्वप्न मत समझिए । चुपचाप बैठ कर सोचनेका समय नहीं है । इस स्वराज्यके लिए प्रत्येकको अनवरत परिश्रम करना पड़ेगा । सबको अपने अपने लिए प्रयत्न करना होगा । क्योंकि डूबता हुआ, दूसरेको कैसे बचा सकता है । यदि हम लोग दासताकी बेड़ीमें जकड़े रह कर दूसरोंको उबारना चाहें तो इसे व्यर्थ प्रलाप समझना चाहिए । इतना तो आप समझ ही गये होंगे कि अँगरेजोंका मार भागना हम लोगोंको अभिमत नहीं है । यदि वे लोग भारतके होकर रहें तो ठीक है, नहीं तो पश्चिमी सभ्यताके साथ रहनेके लिए हमारे पास उनके लिए अङ्गुल भर भी भूमि नहीं है । इस अवस्थाको लाना हम लोगोंका काम है ।

पाठक—अँगरेजोंको पूर्वीय ढंगका बनाना असम्भव है ।

सम्पादक—इसके माने तो यह है कि वे मनुष्यत्व रहित हैं । इसके अतिरिक्त हमसे इससे क्या मतलब, चाहे वे अपनी दशाको बदलें या न बदलें । हम अपने घरकी स्थिति सुधार लेंगे और उसमें वही लोग रहने पावेंगे जो उसमें रहनेके योग्य होंगे; दूसरोंको लाचार हो कर उसे छोड़ देना पड़ेगा । यह बातें होना स्वाभाविक हैं ।

पाठक—पर इतिहास इस बातका साक्षी नहीं है ।

सम्पादक—'जो अब तक इतिहासमें नहीं हुआ है वह अब नहीं होगा' इसको मान लेना मनुष्यकी मर्यादाको घटाना है। चाहे हुआ हो या न हुआ हो, पर जो उचित प्रतीत होता है उसको कार्यक्रममें लाना आवश्यक है। सब समय बराबर नहीं होते। भारत निराला है। इसकी शक्ति अतुलनीय है। इस लिए किसी अन्य देशके इतिहाससे इसको तौलना ठीक नहीं है। मैंने कहा है कि कितने राष्ट्र पैदा हुए और अपनी अपनी सभ्यताको लेकर चले गये, पर धक्के पर धक्के पड़ने पर भी हमारा भारत ज्योंका त्यों खड़ा है।

पाठक—मैं ठीक ठीक नहीं समझ सकता। इसमें तो सन्देह नहीं कि हम लोगोंको बलात् अँगरेजोंको निकालना पड़ेगा। इनके रहते हमें चैन कहाँसे मिल सकता है। किसी कविने कहा है कि 'दासोंको स्वप्नमें भी आनन्दका अनुभव नहीं मिलता।' ये लोग दिन पर दिन हम लोगोंको क्षीण करते चले जा रहे हैं। हम लोगोंका महत्त्व लुप्त हो गया। लोगोंको मारे भयके सास भी नहीं आता। ये लोग हमारी जानके ग्राहक हैं। किसी न किसी उपायसे इन्हें निकालना ही पड़ेगा।

सम्पादक—जोशमें आकर आप प्रसंग ही भूल गये। हमीं लोगोंने उन्हें आनेका अवसर दिया और हमीं लोगोंके कारण

वे अब तक ठहरे हैं। उनकी सभ्यताका हम लोगोंने अनुकरण किया है। यही कारण है कि वे जमे हैं। यदि उनमे घृणा न कर उनकी सभ्यतामे घृणा करें तो वे सहजमें दूर किये जा सकते हैं। अच्छा, थोड़ी देरके लिए मान लिया जाय कि बलसे उन्हें निकालना होगा तो क्या किया जायगा।

पाठक—इटलीका अनुकरण करना होगा। जो कुछ करना मेजिनी तथा गैरीवाल्डीके[1] लिए सम्भव था हम लोगोंके लिए भी सम्भव है। वे लोग महात्मा थे।

---

१ मैजिनी तथा गैरीवाल्डी दोनों इटलीके उद्धारक महात्माओंमेंसे थे। अनेक तरहकी यातनायें सह कर उन लोगोंने इटलीको प्रसाके चङ्गुलसे निकाला था।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद ।

भारत तथा इटली ।

सम्पादक—अच्छे वक्त पर आपने इटलीकी चर्चा छेड़ी । मेजिनी महापुरुष था, गैरीवाल्डी वीर सिपाही था। दोनों पूजनीय हैं । उनके जीवनसे हमें अनेक तरहकी शिक्षाएँ मिल सकती हैं । पर भारत और इटलीकी स्थितिमें भेद है । पहले मेजिनी और गैरीवाल्डीमें जो भेदभाव था उसीको जान लेना चाहिए । इटलीमें जो कुछ मेजिनी चाहता था वह न हो सका । मेजिनीने मनुष्यके कर्तव्योंकी आलोचना करते हुए लिखा है कि मनुष्यको जानना चाहिए कि अपना शासन किस प्रकार करना होता है । यह बात इटलीमें नहीं है । गैरीवाल्डीको इसमें विश्वास नहीं था । गैरीवाल्डीकी उत्तेजना पर इटलीवालोंने कृपाण उठाया । इटली और आष्ट्रिया दोनोंकी एकसी सभ्यता थी । वहाँ पर जैसेको तैसाका मामला था । किसी न किसी उपायसे गैरीवाल्डी आष्ट्रियावालोंसे इटलीको मुक्त कराना चाहता था। परिणाम क्या हुआ । कदाचित् आप समझते होंगे कि इटली

पर स्वयं इटलीवालोंका शासन है। इससे वहाँ सुख तथा शान्ति होगी। पर आप भ्रममें हैं। मैजिनीने लगातार यही बात दिखलाई है कि इटली स्वतन्त्र नहीं हुआ। जो स्वतन्त्रता इटलीको प्राप्त हुई उसका मैजिनी कुछ और अर्थ लगाता था और विक्टर इमनल कुछ और। कावूर, इमनल तथा गैरीवालडीका मत था कि राजा तथा राज्यवर्ग ही इटलीके सब कुछ हैं। मैजिनीका कहना था कि देशके समस्त किसानोंका खयाल करना आवश्यक है। इमनल इत्यादि तो केवल उनके दास थे। जिस इटलीका स्वप्न मैजिनी देखता था वह अभी भी दासताकी बेड़ीमें जकड़ा पड़ा है। वह राष्ट्रीय युद्ध वास्तवमें दो राजाओंका युद्ध था और जनताको व्यर्थ जान देनी पड़ी थी। मजदूरोंकी स्थिति अब भी खराब है। इसी लिए कभी कभी वे उठ खड़े होते हैं और विद्रोह कर बैठते हैं। आष्ट्रियाकी सेना हट जानेसे इटलीको क्या लाभ हुआ। जिन सुधारोंके लिए युद्ध किया गया कदाचित् वे अभी तक कार्यक्रममें नहीं लाये गये। जनताकी अवस्था पहलेके जैसी शोचनीय ही है। क्या भारतमें भी आप वही बातें करना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि भारतवासियोंको सुख तथा शान्तिमें रखना ही आपकी आन्तरिक अभिलाषा है, न कि शासनकी बागडोर केवल अपने

हाथमें ले लेना। यदि प्रत्येकको सुखी बनाना है तो एक बातकी चिन्ता करनी चाहिए। ये तैंतीस करोड़ भारतीय स्वराज्य कैसे पा सकते हैं। देशी राजाओंके शासनकी क्या दशा है। प्रजा पर मनमाना अत्याचार होता है और कोई सुननेवाला नहीं है। उनके राज्यमें अँगरेजोंसे भी अधिक अत्याचार किये जा रहे हैं। यदि शासनकी बागडोर अपने हाथमें लेकर भारतको इसी स्थितिमें डालना है तो वह जैसा है वैसा ही अच्छा है। एक आपत्तिको दूर कर उससे भीषण आपत्तिको निमन्त्रण देनेसे पहली आपत्ति झेलते रहना ही अच्छा है। यदि मुझमें शक्ति होती तो देशी राजाओंके अत्याचारोंको भी रोकनेका प्रयत्न करता। देशभक्तिसे मेरा अभिप्राय प्रत्येक भारतवासीके सुख तथा शान्तिसे है; और यदि यह अँगरेजोंसे प्राप्त हो सकता है तो मैं उन्हींके अधीन रहना श्रेयस्कर समझता हूँ। यदि किसी अँगरेज महात्माने भारतको स्वराज्य दिलानेके लिए थोड़ा भी प्रयत्न किया, उस पर किये गये अत्याचारोंका विरोध किया, यथाशक्ति भारतकी सेवा की तो मैं उस अँगरेजको भारतीय करके मानूँगा।

भारत इटलीके समान तभी युद्ध कर सकता था जब कि उसके पास शस्त्र होते। इस बात पर आपने विचार नहीं किया। अँगरेज लोग अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हैं, इसका मुझे भय नहीं है।

पर भारतको उनके मुकाबिलेका बनानेके लिए लाखों भारतवासियोंको अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित करना पड़ेगा; और इसके लिए बहुत समय लग लगेगा। भारतमें इस भाँति अस्त्रशस्त्रके प्रचार करनेके माने भारतको यूरोप बनाना है। इससे यहाँकी स्थिति भी यूरोपकी तरह शोचनीय हो जायगी। तब भारतको भी यूरोपीय सभ्यता पूरी तरहसे ग्रहण करनी पड़ेगी। यदि यही करना है तो इन्हीं अँगरेजोंको बने रहने देना चाहिए, क्योंकि ये उस सभ्यताके दक्ष पण्डित हैं। इन्हींके रहते हम अधिकारोंके लिए आन्दोलन करते रहेंगे और जो कुछ मिल जायगा उसीसे सन्तुष्ट हो समय बितावेंगे। पर वास्तवमें भारत कभी भी शस्त्र ग्रहण करनेके लिए तैयार नहीं होगा और यह भारतके सौभाग्यकी बात है।

पाठक—आप असंभव बात सोच रहे हैं। सबको शस्त्र ग्रहण करना आवश्यक नहीं है। पहले कुछ अँगरेजोंकी हत्या करके हम लोग उन्हें भयभीत कर देंगे, इसके बाद कुछ थोड़े लोग सशस्त्र तैयार रहेंगे जो उनके साथ खुल्लमखुल्ला युद्ध करेंगे। दो चार लाख जानें अवश्य जायँगी, पर देशभूमि पराधीनतासे मुक्त हो जायगी। गुरिला-युद्ध * कर अँगरेजोंको परास्त करेंगे।

* मराठोंकी तरह पहाड़ोंमें छिप कर छापा मारना; सेना एकत्रित कर खुला युद्ध नहीं करना।

सम्पादक—अर्थात् भारतकी पवित्र भूमिको आप कलुषित करना चाहते हैं। हत्या करके देशकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेमें आप जरा भी नहीं हिचकेंगे। इससे तो आत्महत्या श्रेष्ठ है। दूसरोंकी हत्या करना भीरुता है। नृशंमतासे हत्या करके भारत स्वतन्त्र नहीं होना चाहता।

वर्तमान सभ्यताके मदसे चूर हुए लोग ही इस पतित कार्यको करनेका साहस कर सकते हैं। मारकाटसे अधिकार लेकर देशमें सुख तथा शान्ति नहीं स्थापित की जा सकती। यदि भारतको विश्वास है कि धिङ्गरा आदिके कर्तव्योंसे उसे लाभ हो सकता था तो उसने भूल की है। धिङ्गरा देशभक्त था, पर उसमें दूरदर्शिता नहीं थी। वह बुरे मार्ग पर था। उससे केवल हानि हो सकती है।

पाठक—मेरा तो विश्वास है कि इन हत्याओंसे डर कर ही अधिकारी-वर्ग शासन-सुधारकी आयोजना कर रहे हैं।

सम्पादक—वे लोग वीर भी हैं और भीरु भी हैं। मुमकिन है कि वे लोग डर कर ही सुधार करते हों। पर स्मरण रहे डरा कर लेना लाभदायक नहीं हो सकता, क्योंकि भयका कारण उठा कि वह भी हाथसे गायब हुआ।

सोलहवाँ परिच्छेद ।



पशु-शक्ति ।



पाठक—यह तो आपने एक विचित्र बात बतलाई कि जो कुछ डरसे दिया जाता है वह चिरस्थायी नहीं रह सकता। पर जो कुछ दिया जायगा वह लौटा नहीं लिया जा सकता।

सम्पादक—वह लौटा नहीं लिया जायगा। पर उसका जोर कम कर दिया जायगा। सन् १८५७ की घोषणा गदरके बाद की गई थी और उसका एक मात्र अभिप्राय शान्ति स्थापन करना था। जब पूरी तरहसे शान्ति स्थापित हो गई उसका जोर कम कर दिया गया। यदि दण्डके भयसे किसीने चोरी करना छोड़ दिया है तो भय हट जाते ही वह पुनः चोरी करना आरम्भ कर देगा। यह युग-युगान्तरका अनुभव है। हम लोगोंको दबा कर काम निकालनेकी आदत पड़ गई है।

पाठक—पर आप अपने ही प्रतिकूल कह रहे हैं। यह तो आप मानते हैं कि विलायतमें अँगरेज लोग जो कुछ पा सके हैं वह केवल पशु-शक्तिके उपयोगसे पा सके हैं। आपने यह भी कहा है कि उसकी प्राप्ति निरर्थक है। पर इससे मेरे मतका खण्डन नहीं होता। जिस वस्तुको पानेकी वे लोग चेष्टा करते रहे उसको उन लोगोंने पाया। मेरे कहनेका केवल यही तात्पर्य है कि उनकी मनोकामना पूरी हुई। चाहे किसी तरहसे सिद्धि क्यों न हुई हो। हमारा अभिप्रेत तो निरर्थक नहीं है। किसी भी उपायसे हमें उसको हस्तगत करना चाहिए। मान लीजिए कि घरमें चोर घुसा और पकड़ा गया। उस वक्त हम उसके साथ व्यवहार करनेका उपाय कहाँ तक सोच सकेंगे। किसी न किसी तरह उसे निकालना ही पड़ेगा। इतना तो माननेके लिए आप तैयार हैं कि हम लोगोंको कुछ भी नहीं मिला है और न मित्रता करनेसे मिल सकता है। तब हम लोग भी पशु-शक्तिके प्रयोग द्वारा ही अपने अभिप्रेतकी सिद्धि क्यों न करें। जो कुछ मिल जायगा उसे चिरस्थायी रखनेके लिए भी आवश्यकतानुसार हम उसी शक्तिका प्रयोग करते रहेंगे। मान लीजिए कि एक लड़का अपना पाँव रह-रह कर आगमें डाल कर जला लेता है। उसकी रक्षा करनेके लिए उसे डरवाते रहना

अनुचित नहीं होगा। भली या बुरी तरहसे हमें अपने इष्टकी सिद्धि कर लेनी है।

सम्पादक—आपने बात तो बड़े मतलबकी कही है। इसके चक्करमें कितने आ चुके हैं। पहले मैं भी इसी तरहकी बातें किया करता था। पर अब मेरा सब भ्रम दूर हो गया है और अब मैं आपका भी भ्रम दूर करनेका प्रयत्न करूँगा। पहले इसी बात पर विचार किया जाय,—“ चूँकि अँगरेजोंने पशुबलके प्रयोगसे अपना अभीष्ट साधन किया, इससे हम लोगोंको भी उस शक्तिका प्रयोग करना चाहिए। ” इसका परिणाम क्या होगा। जिस वस्तुकी उन्हें प्राप्ति हुई उसीकी हमें भी होगी। पर मुझे वह नहीं चाहिए। आपको इस बातका विश्वास है कि साधन तथा उसके उपायमें कोई सम्बन्ध नहीं है, पर यह गलत है। इसी मोहजालमें पड़ कर बड़े बड़े धर्मधुरन्धरोंने भी भूलें की हैं। आपके कथनसे तो प्रतीत होता है कि आपको विश्वास है कि “ बोयके धतूर पेड़ आमफल चाहत हो। ” समुद्र पार करनेके लिए जहाजका होना अत्यावश्यक है। पर यदि जहाजमें न चढ़ कर गाड़ी पर चढ़ कर पार होनेका प्रयास किया जाय तो एक मिनिटमें हम और गाड़ी दोनों पानीकी तहमें चले जायँगे। कहावत है,—“ यथा हि शीतला देवी तादृशो खरवाहनः। ” इसके

अभिप्रायमें हेरफेर कर लोग मार्गको छोड़ कर भटकने लग गये हैं। साध्यकी उपमा पेड़ और साधककी उपमा बीजसे होनी चाहिए। वृक्ष तथा बीजमें जितना घना सम्बन्ध है साध्य और साधकमें भी वही सम्बन्ध है। शैतानकी उपासना करनेसे ईश्वरकी पूजाका फल नहीं मिल सकता। इस लिए यदि कोई मनुष्य कहे कि चाहे शैतानकी उपासना क्यों न की जाय, पर मेरा मन तो ईश्वरमें लीन है और उसका अभीष्ट फल होगा ही, तो वह भूल पर है। 'सींचे पेड़ मदारको आम कहाँतें होय।' अँगरेज लोग वोट देनेका अधिक अधिकार चाहते थे, उन्होंने पाशविक शक्तिका उपयोग कर उसे प्राप्त किया। पर वास्तविक अधिकार तो कर्तव्य पालनसे ही मिल सकता है, और यह वास्तविक अधिकार उन्हें अब तक नहीं मिला है। इससे आजकल इङ्गलैण्डकी क्या स्थिति हो रही है। चारों ओर अधिकारहीके लिए शोरगुल मच रहा है, पर कर्तव्यका किसीको भी खयाल नहीं है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अधिकारहीका भूखा है वहाँ किस किसको कौन कौन अधिकार दिये जा सकते हैं। मेरे ऊपर कहनेका यह तात्पर्य नहीं है कि वे लोग कर्तव्य पालन करते ही नहीं, बल्कि मेरा यह अभिप्राय है कि जिस अधिकारको वे लोग चाहते हैं उस संबन्धके जो कर्तव्य हैं

उनका पूर्ण रीतिसे पालन नहीं होता। और इसी लिए वे अधिकार प्राप्त होने पर एक तरहके बोझ रूप हो जाते हैं। अर्थात् जिस उपायका उन लोगोंने प्रयोग किया है उसीके अनुरूप ही फल पाया है। उन लोगोंने किसी भी उपायसे अपना इष्ट साधन ही श्रेय समझा। यदि मैं तुम्हारी घड़ी लेना चाहता हूँ तो उसके तीन उपाय हैं; या तो मैं उसे चुरा लूँ, या खरीद लूँ, या पुरस्कार रूपसे लेलूँ। मैं जिस उपायका प्रयोग करूँगा उसीके अनुकूल इसका नाम पड़ेगा, अर्थात् चोरीकी वस्तु, खरीदी हुई वस्तु या इनाममें पाई हुई वस्तु। देखिए एक ही वस्तुको पानेके लिए भिन्न भिन्न उपायोंका प्रयोग हो सकता है और भिन्न भिन्न उपायोंसे प्राप्त वस्तुकी भिन्न भिन्न मर्यादा होगी। क्या फिर भी आप कहेंगे कि उपाय कोई वस्तु नहीं है।

अब मैं चोरवाला उदाहरण लूँगा। आपका मत है कि किसी उपायसे चोरको भगाना चाहिए। इसमें मैं आपसे सहमत नहीं हूँ। भिन्न भिन्न व्यक्तिके लिए भिन्न भिन्न उपायोंका प्रयोग किया जायगा। मान लीजिए कि स्वयं किसीके पिता या मित्र चोरी करनेकी नीयतसे घरमें घुसे हैं तो क्या उनके साथ भी वही वर्ताव किया जायगा जो किसी अज्ञात पुरुषके साथ किया जाता। कहीं गोरे सफेद चमड़ेका चोर हुआ या दुर्बल हुआ तो भी भिन्न

भिन्न उपाय होंगे। और यदि कहीं चोर महाशय भी अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हुए तो चुप ही रह जाना पड़ेगा। एक बात और भी होगी। यदि चोरराम मकानदारके पिता हुए, और अस्त्रशस्त्रसे सुसज्जित हुए तो मकानदार नींदमें गाफिल होनेका बहाना कर पड़ा रह जायगा और जान-बूझ कर चोरी करा देगा; क्योंकि दोनोंके दोनों बलमें बढ़कर निकलेंगे, इससे तरह दे जाना ही अच्छा होगा। फिर देखिए, उन दोनों शक्तियोंमें भी भेद है। पिताकी शक्ति देख कर मुझे करुणासे रुलाई आने लगेगी, पर अज्ञात पुरुषकी शक्तिके सामने अपनेको बेबस पाकर क्रोध चढ़ आवेगा और कुअवसर जान कर चुप रहने पर भी मन ही मन बदला लेनेकी जीमें ठान लेनी होगी। एक ही बातके लिए तीन चार प्रकारकी स्थितिका सामना करना पड़ा। इन उदाहरणोंसे उपायके लिए अब भी भेदभाव रह सकता है। किस उपायका अवलम्बन करना चाहिए यह मुझे ज्ञात है, पर कदाचित् उसकी चर्चासे तुम डर जाओ। इस लिए मैं उसकी चर्चा नहीं करना चाहता। मैं तुम्हारे ऊपर ही उसका विचार छोड़ देता हूँ। यदि तुम सोच कर कोई एक उपाय निकाल सको तो ठीक है, नहीं तो लाचार होकर तुम्हें अनेक तरहसे भिन्न भिन्न उपायोंका प्रयोग करना होगा। जरा सोचनेसे तुम्हें यह भी

विदित हो जायगा कि हरेक उपायसे यह काम नहीं हो सकता, प्रत्येक अवस्थामें तुम्हें उचित उपाय ढूँढ़ निकालना होगा। इससे यह मतलब निकलता है कि उचित उपायका प्रयोग करना आपकी इच्छा पर नहीं निर्भर है, बल्कि समय तथा अवस्था पर निर्भर है।

मान लीजिए किसी हथियारबन्द डाकूने आपके घर डाका मारा। मारे क्रोधके आप आग-बबूला हो रहे हैं। आपको अपनी हानिकी कोई परवा नहीं है, पर आप दूसरोंके लिए ऐसा कर रहे हैं; क्योंकि हिम्मत बढ़ जानेसे वह आपके पड़ोसियोंको तङ्ग करेगा। ठीक है, बूढ़ेके मरनेका इतना भय नहीं है, जितना यमके घर देख लेनेका भय है। आपने चन्द हथियारबन्द आदमियोंको इकट्ठा कर उसके घर पर धावा मारनेका विचार किया। उसे पता लग जाता है और वह भाग जाता है। इससे उसके दिलमें भी बदला लेनेकी ठस जाती है। अब वह अन्य डाकुओंको एकत्रित कर आपके पास सन्देशा भेजता है कि "होशियार रहिएगा, अमुक दिन दो पहरको मैं खुले आम आपके घर पर डाका मारूँगा।" आप भी निडर हो दलबल सहित उसका मुक़ाबिला करनेके लिए तैयार हैं। पर वह क्या करता है। आपको चकमा देकर वह

आपके पड़ोसियोंके घर डाका डालता है। वे आकर आपके पास अपना दुःखड़ा रोते हैं। आप उत्तर देते हैं,—"भाई, मेरा माल लुटा जा रहा है, पर उसकी परवा न कर मैं आप लोगोंकी रक्षाके लिए ही इतना कर रहा हूँ।" पड़ोसी लोग रोकर कहते हैं,—"बाबा, आजके पहले डाकुओंने हम लोगोंको कभी भी नहीं छेड़ा था। जबसे आपने उनसे बैर ठाना है तभीसे हम लोगोंके सिर पर यह बला आकर उपस्थित हुई है। अब तो आप दोनों तरफसे गये। आप चले भलाई करने और परिणाम कुछ उलटा ही हुआ। उनका कहना भी यथार्थ है। आपकी स्थिति कैसी हो गई है। यदि इस अवस्थामें आप डाकूका पीछा छोड़ देते हैं तो आपकी अप्रतिष्ठा होती है। आप उनको अनेक तरहसे धैर्य्य देते हं और कहते हैं,—"भाई लो, मेरे पास जो कुछ है सब आपका है, मैं आपको अस्त्र-शस्त्र दूँगा, उनका प्रयोग सिखलाऊँगा। डाकुओंका संहार किये बिना नहीं रहना चाहिए।" डाकू लोगोंकी संख्या भी दिन दिन बढ़ती गई। दोनोंमें गाढ़ी शत्रुता हो गई। इससे आपको क्या मिला। डाकुओंकी आजन्म शत्रुता और पड़ोसियोंकी निन्दा। यदि विचार कर देखिएगा तो आपको विदित होगा कि मैंने कोई बात अनुचित नहीं कही है।

अब इसके दूसरे पक्षको देखिए। आपने अपने मनमें समझो कि इसने अज्ञान-वस यह काम किया है। इसे समझा बुझा कर ठीक मार्ग पर लाना चाहिए। अवसर पाकर अपने मनमें आप सोचने लगे भाई,—यह भी तो ईश्वरकी सन्तान है, भला इसने ईश्वरीय आज्ञाका उल्लंघन क्यों किया। आपने अपने मनमें ठान लिया कि यथासाध्य इसे इस पापकर्मसे दूर करेंगे। इधर तो आपके मनमें ये बातें समाई और उधर वह दूसरी बार पुनः चोरी करने आया। तब क्रोध न आकर आपको उस पर दया आती है। आप अपने मनमें सोचने लगे, कदाचित् चोरी करनेकी उसे कोई बीमारी हो गई है। तब आपने हर तरहसे उसका मार्ग सुगम कर दिया। रातको घरका द्वार नहीं बन्द करते, सोनेकी जगह बदल दी, इतना ही नहीं, आपने माल-असबाबको भी इधर उधर मैदानमें फेंक दिया। चोर फिर आया। पर यह सब अनहोनी बातें देख कर वह घबरा जाता है। उस बार भी वह चोरी करता है। पर उसके मनमें एक विचित्र आन्दोलन उठता है। वह आपके विषयमें जाननेका उद्योग करता है। उसे आपके प्रेमभाव तथा उदारता-का परिचय मिलता है। अपने किये पर उसे पछतावा होने लगता है। वह आपका सब माल-असबाब लिये आपके पास

आकर उसे लौटा देता है और क्षमा माँगता है। उसी दिनसे वह चोरी करना छोड़ देता है। वह आपकी ताबेदारी करने लगता है। आप उसे अच्छे पद पर नियुक्त करते हैं।

आपने क्या देखा। एक ही कार्यमें दो भिन्न उपायोंसे भिन्न भिन्न परिणाम निकले। मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि सभी डाकू या चोर इसी तरहका व्यवहार करेंगे; या सभी माल-वाले आपहीकी तरह दया और प्रेमभाव दिखलावेंगे। अभिप्राय यह है कि अच्छे कामका सर्वदा अच्छा परिणाम होता है और यदि सब जगह नहीं तो अधिकतर हालतोंमें जो काम प्रेमसे निकल सकता है वह भयसे नहीं निकल सकता। पाशविक शक्तिके प्रयोगमें क्षतिकी हमेशा सम्भावना रहती है, पर दया-धर्म इससे एकदम खाली है।

यहीं पर प्रार्थनाके विषय पर भी दो चार शब्द कह देना अच्छा होगा। इसे सब मानते हैं कि शक्तिके बिना प्रार्थना बेकार होती है। पर स्वर्गवासी जस्टिस रानाड़ेका कथन है कि इससे एक विशेष लाभ यह होता है कि जनतामें ज्ञान-संचार होता है। इससे शासकोंको अपनी प्रजाकी वास्तविक स्थितिका बोध हो जाता है। इस कारण उन्हें व्यर्थ नहीं कहा जा सकता।

यदि किसी बराबरीवालेकी ओरसे प्रार्थना-पत्र आया हो तो उसे सुजनताकी निशानी समझनी चाहिए। और यदि सेवकने भेजा हो तो उसे दासताका रूप जानना चाहिए। जिस प्रार्थना पत्रके साथ साथ धमकीके भी शब्द हों तो उसे भी बराबरीका समझना चाहिए और यह उसकी नम्रता है कि अपनी माँगको उसने प्रार्थना-पत्र द्वारा माँगा है। प्रार्थना-पत्रके साथ दो प्रकारकी धमकी रह सकती है। 'यदि आप हम लोगोंकी' प्रार्थना पर विचार नहीं करेंगे तो पछताना पड़ेगा' यह एक तरहकी है और दूसरी यह है—'यदि हम लोगोंकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया जाता तो स्मरण रखिए, हम लोग आपके सामने भिक्षुक बन कर नहीं खड़े होंगे। जब तक हम लोग चाहते हैं तभी तक आप हमारे ऊपर शासन कर सकते हैं। आजसे हम लोग आपसे किसी तरहका सम्बन्ध नहीं रखना चाहते।' इसीको आत्मबल या सत्याग्रह कहते हैं। यह अक्षय है। प्राचीन समयसे हम लोगोंमें एक कहावत प्रचलित है,—"एक नकार छत्तीस बीमारियोंकी ओषधि है। सत्याग्रह या आत्मबलके सामने शक्तिबल या पाशविक शक्तिको सिर झुकाना पड़ता है।

अब हम आपके अन्तिम उदाहरण लड़केके आगमें पैर घुसाने पर विचार करेंगे। उससे आपको विशेष लाभ नहीं

होगा। आप लड़केके साथ क्या व्यवहार कीजिएगा। मान लीजिए कि उसे इतना हठ है कि वह आपका डर न मान कर पैर आगमें डालने ही जाता है। ऐसी दशामें आपके सम्मुख दो ही कर्तव्य हैं। यदि आप यह नहीं देख सकते तो उस बालकका प्राणान्त कर डालिए अथवा यदि उसकी मृत्यु आपको अत्यंत दुखदाई है और आप उसके इस कर्तव्यको भी नहीं देख सकते तो अपनी ही हत्या कर डालिए। पर यह जरा कठिन है। यदि आपके हृदयमें लड़केकी मुहब्बत पराकाष्ठा पर नहीं पहुँच गई है तो आप लाचार होकर देखते रहिएगा और लड़केको जलने दीजिएगा। तब आपने क्या देखा। आपने शक्ति-बलका प्रयोग नहीं किया। यह बल क्या है, समझना पड़ेगा।

स्मरण रखिए, लड़केको बल-पूर्वक रोकनेमें आप उसकी भलाईका खयाल रखते हैं। उसके फायदेके लिए आप यह सब कर रहे हैं, पर अँगरेजोंके प्रतिकूल पाशविक शक्तिके प्रयोगमें ये बातें नहीं हैं। इस हालतमें आप अपने स्वार्थको सामने रक्खे हुए हैं। आपका जातीय स्वार्थ है, देशका स्वार्थ है, मातृभूमिका स्वार्थ है। यहाँ पर दया-प्रेमका प्रश्न नहीं उठता। यदि आप कहें कि अँगरेजोंकी बुराइयाँ अग्निरूप हैं और अज्ञा-

न-वश उन बुराइयोंको दोहराते जानेसे वे उसके शिकार बन रहे हैं और हमारा यह धर्म है कि हम उनकी उससे बालककी भाँति रक्षा करें, तो आपको अपना त्याग भी करना होगा। बालककी तरह यदि वे नहीं मानते तो आपको उसका विपरीत परिणाम भोगना होगा। यदि आप दयाभावसे प्रेरित होकर इतनी यातना सहनेको तैयार हैं तो बेशक पाशविक शक्तिका प्रयोग आप कर सकते हैं।

सत्रहवाँ परिच्छेद।

सत्याग्रह।

पाठक—ऐतिहासिक घटनासे कहीं आप दिखला सकते हैं कि सत्याग्रहको वास्तविक सफलता मिली है। सत्याग्रहसे क्या किसी राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है। क्या शारीरिक दण्ड दिये बिना दुष्ट लोग अपने कामसे बाज आ सकते हैं।

सम्पादक—महात्मा तुलसीदासने कहा है—"दया धर्मको मूल है।" इस लिए यावज्जीवन हम लोगोंको दया-धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। यही सच्चा धर्म है। यही सत्याग्रह है। इसको हम पग पग पर प्रत्यक्ष देखते हैं। बिना इसके विश्व ही स्थिर नहीं रह सकता। पर इसके लिए आप ऐतिहासिक प्रमाण चाहते हैं। इतिहासमें इन सब बातोंका मिलना कठिन है; क्योंकि उसमें तो केवल परस्पर युद्धके वृत्तान्त भरे हैं। उसमें दिखलाया गया है कि राजाओंने परस्परके वैमनस्यसे एक दूसरेको जानका ग्राहक

किस भाँति बनाया। यही दृष्टान्त यह दिखलानेके लिए पर्याप्त है कि यदि संसारमें केवल इतना मात्र ही होता रहता तो संसारका अब तक अन्त हो गया होता। यदि संसारका आरम्भ युद्धसे ही हुआ होता तो कदाचित् अब तक उसमें एक मनुष्य भी अवशेष नहीं रह गया होता। जिनके साथ युद्ध किया गया, वे लापता हो गये; जैसे आष्ट्रेलियाके आदिम निवासी। अब उनमेंसे एकका भी पता नहीं है। कारण कि इन लोगोंने आत्मबलका अवलम्बन नहीं किया।

पर संसार जन-रहित नहीं है। अब भी इसमें डेढ़ अरबसे अधिक जन वर्तमान हैं। इससे स्पष्ट है कि आत्मरक्षाके लिए उन्होंने आत्मबलका प्रयोग किया होगा। भीषण भीषण युद्धोंके होते हुए भी लोग जीवित हैं। सत्याग्रहके प्रयोगका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

सत्याग्रह ही कितनोंके जीवित रहनेका कारण है। अनेक घरोंके झगड़े इसीके कारण दब जाते हैं। करोड़ों आदमी सुखसे रहते हैं, पर इतिहासको इससे क्या करना है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो इतिहासमें वे दो घटनायें भरी हैं जहाँ इस शक्तिका लोप हुआ है; इसका ह्रास हुआ है। देखिए, दो भाई आपसमें लड़ जाते हैं। उनमेंसे एक यह सोच कर कि भाई

भाईका युद्ध अच्छा नहीं, गम खाकर चार बातें सह कर चुप रह जाता है। दोनोंमें पुनः वही प्रेमभाव आ जाता है और वे शान्तिसे रहने लगते हैं। किसीको पता भी नहीं लगता कि क्या हुआ। यह आत्मबलकी बदौलत था। अब देखिए दोनों भाई लड़ते हैं और एक दूसरेके जानके ग्राहक हो जाते हैं। फिर अदालतकी (यह भी एक प्रकारकी पाशविक शक्ति है) शरण लेते हैं। अखबारवाले भी उनका नोट देने लगते हैं। यही बात राष्ट्र राष्ट्रके साथ है; क्योंकि जो नियम कुटुम्बवालोंके लिए है वही नियम राष्ट्रके लिए भी है। इससे यही विदित होता है कि जहाँ मनुष्य प्राकृतिक नियमका उल्लंघन करता है उसीका इतिहास उल्लेख करता है। सत्याग्रह प्राकृतिक है, इससे इतिहासमें इसकी चर्चा नहीं है।

पाठक—आपके कथनसे प्रत्यक्ष है कि सत्याग्रहके दृष्टान्त इतिहासमें नहीं मिल सकते। इससे इसे सम्यकरीतिसे समझ लेना चाहिए। कृपया आप इसकी सविस्तृत मीमांसा कीजिए।

सम्पादक—शारीरिक यातना सह कर ही अपने स्वत्वको प्राप्त करना सत्याग्रह है। जिस कामको करनेके लिए हमारा अन्तरात्मा रोकता है और उसे हम नहीं करते, यही सत्याग्रह है। मान लीजिए कि सरकारने हम लोगोंके लिए कोई नियम

बनाया। वह हम लोगोंके अनुकूल नहीं है। इसके न माननेके दो उपाय हैं, एक तो पाशविक शक्तिका उपयोग करना और दूसरे इसको न मान कर निर्धारित दण्डका भागी होना। यही अन्तिम उपाय सत्याग्रह है।

इस बातको माननेके लिए प्रत्येक व्यक्ति तैयार है कि आत्मबल सबसे श्रेष्ठ है। और इसमें यातना भी आत्मगत है। दूसरोंको इसका भागी नहीं बनना पड़ता। सत्याग्रहके प्रयोगके पूर्व प्रत्येक व्यक्तिको भली भाँति जान लेना चाहिए कि जिसका वह विरोध करने जा रहा है वह वास्तवमें असंगत है, क्योंकि कितनी बातें अन्तमें संगत प्रतीत होने लगती हैं।

पाठक—तो आप नियम पालन नहीं करेंगे। यह तो अराजकता है। हम लोग न्याय-प्रियताके लिए विख्यात हैं। आप तो गर्मदलवालोंसे भी बढ़े चढ़े प्रतीत होते हैं। भला वे तो सभी नियमको पालन करनेके लिए तैयार हैं, केवल अनुचित नियम बनानेवालोंको किसी प्रकार निकालना ही उन्हें अभिष्ट है।

सम्पादक—मैं केवल सत्यका अवलम्बन चाहता हूँ। इसमें यदि मैं गर्मदलवालोंसे भी बढ़कर निकलूँ तो कोई चिन्ता नहीं। हम लोग न्यायप्रिय हैं, इस वाक्यका वास्तविक अर्थ यह है कि हम लोग सत्याग्रही हैं। कोई नियम हम लोगोंके अनुकूल नहीं

है। इसके लिए हम लोग निर्माताकी हत्या करना नहीं चाहते। केवल उसको स्वीकार न कर स्वयं :दुःख उठाते हैं। न्यायप्रियके अर्थ यह नहीं है कि नियम भले हों या बुरे हम उनका पालन करते रहेंगे। ऐसा कभी भी देखनेमें नहीं आया है। प्रायः सभी कालमें लोग प्रतिकूल नियमोंको स्वीकार न कर अनेक तरहकी यातनायें सहते रहे हैं। प्रकृति तथा इच्छाके प्रतिकूल नियमोंको मानते जाना मनुष्यताके विपरीत है। इसे दासता कहना चाहिए। यदि आज यह नियम बना दिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति नंगे निकलें तो क्या उसका पालन किया जायगा। यदि मुझमें आत्मबल है तो मैं साफ साफ कह दूँगा कि आपका नियम केवल आपके लिए हैं, मैं इसको नहीं मान सकता। पर हम लोग इतने पतित हो गये हैं कि बुरेसे बुरे नियमोंको पालन करनेके लिए तैयार रहते हैं।

जिसमें मनुष्यत्व है, वह किसी दूसरेकी परवा नहीं करता। उसे केवल ईश्वरका भय है। मनुष्य-निर्मित नियमोंकी वह कोई परवा नहीं करता। सरकार भी ऐसी आशा नहीं कर सकती। किसी भी नियममें यह नहीं लिखा है कि इसका पालन करना ही पड़ेगा, केवल इतना ही लिखा रहता है कि इनकी अवज्ञाका परिणाम शारीरिक दण्ड होगा। पर

हम लोग इतने पतित हो गये हैं कि उनको पालना ही अपना धर्म समझते हैं। यदि हम लोग इस बातको समझ लें कि असंगत नियमोंको पालनेके लिए हमारा अन्तरात्मा बाधित नहीं करता तो हम लोग बहुत कुछ स्वतन्त्र हो सकते हैं। यही आत्म-बल या सत्याग्रहका मूलमन्त्र है।

अधिक सम्मतिसे जो बात निश्चय हो गई उसे प्रत्येक व्यक्तिको मानना पड़ेगा, यह भूल है। ऐसे कितने ही प्रमाण हैं जहाँ पर अधिक सम्मतिने भूलें की हैं। जितने सुधार हैं प्रायः सभीकी जड़ कम सम्मतिवाले ही होते हैं। उन्हींके लगातार दबावसे अधिक सम्मतिवालोंको दबना पड़ता है। मान लीजिए कि डाकू होनेके लिए डाका मारनेकी विद्या आवश्यक है तो क्या पण्डितको भी उसे सीखना चाहिए। जब तक हम लोग अपने दिलसे यह बात दूर नहीं करते कि प्रत्येक नियमका पालन करना आवश्यक है, हम लोग दासतासे मुक्त नहीं हो सकते। इस विश्वासको मिटानेके लिए सत्याग्रहकी एक मात्र अस्त्र है।

पाशविक बलका प्रयोग, गोले-बारूदका प्रयोग सत्याग्रहके नियमके विरुद्ध है। इससे विदित होता है कि हम लोग अपने प्रतिद्वन्दीसे कुछ कराना चाहते हैं और उसके करनेमें वह आना-

कानी करता है। इस लिए हम लोग पाशविक शक्तिका प्रयोग करते हैं। यदि इस शक्तिका प्रयोग हम लोगोंकी ओरसे समुचित है तो उसका प्रयोग करना उसके लिए भी ठीक है। इससे हम लोगोंमें मत-भेद बना रहेगा। तेलीके बैलकी भाँति हम लोग आँख बन्द कर कोल्हूके चारों ओर लगातार चक्कर लगाया करें और उन्नतिका स्वप्न देखा करें। यदि किसी निर्मित नियमको पालन करनेसे हमारा अन्तरात्मा रोकता है तो हमें केवल सत्याग्रहसे काम लेना चाहिए। किसी अन्य शक्तिका उपयोग हानिकर है।

पाठक—आपके कथनसे विदित होता है कि जब तक कोई शक्ति कमजोर है वह सत्याग्रहसे काम ले, पर बलिष्ट हो जाने पर वह शस्त्र ग्रहण कर सकती है।

सम्पादक—आपने बिल्कुल गलत समझा। सत्याग्रहका कोई मुकाबिला नहीं कर सकता। शस्त्रकी शक्तिसे वह कहीं बढ़ कर है। उसे दुर्बलोंका अस्त्र कैसे कह सकते हैं। जो लोग बल-शक्तिमें भूले हैं उन्हें सत्याग्रहके महत्त्वका ज्ञान ही नहीं है। भला कभी डरपोंक आदमी भी किसी नियमको न पालन करनेका साहस कर सकता है। गरम दलवालोंको लोग पाशविक शक्तिका पक्षपाती बतलाते हैं। पर नियम

पालन वे भी सिखलाते हैं। मैं उन्हें दोषी नहीं ठहराता। वे कर ही क्या सकते हैं। यदि इस भाँति वे अँगरेजोंको निकाल कर आप शासक बन सके तो अपने नियमोंका हम लोगोंसे पालन करानेका प्रयत्न करेंगे। यही उनके शासन-पद्धतिके अनुरूप है। पर सत्याग्रही जान पर आपड़ने पर भी अनुचित नियमोंका पालन करनेके लिए तैयार नहीं होगा।

आपकी सम्मतिमें अधिक साहसी कौन है। वह जो तोपसे दूसरोंको उड़ा देता है या वह जो मुस्कराता हुआ निर्भय तोपके सामने जाकर अपनेको कुर्बान कर देता है। एक मनुष्य मृत्युको अपना चिर सहचर मान कर उसे गले लगानेको दौड़ता है, और दूसरेके हाथमें अनेकोंकी मृत्युकी लगाम है। दोनोंमेंसे कौन सच्चा वीर कहलाएगा। जिसमें शक्ति, साहस तथा मनुष्यत्व नहीं है वह सत्याग्रही होनेके योग्य नहीं है।

शारीरिक बलकी इसमें कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति यदि चाहे तो इसका प्रयोग कर सकता है। स्त्री, तथा पुरुष दोनोंके लिए यह खुला है। इसके लिए शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है। केवल संयम होना चाहिए। फिर क्या, शत्रु कभी भी सामने आनेका साहस नहीं कर सकता।

सत्याग्रह दो धारवाली तलवार है। उसका किसी भाँति भी उपयोग किया जा सकता है। यह प्रयोज्य तथा प्रयोजक दोनोंके लिए लाभकारी है। बिना रक्तपातके यह असम्भाव्य परिणाम उत्पन्न करती है। यह भोठी नहीं हो सकती न और चुराई जा सकती है। स्पर्धासे भी इसमें क्षतिकी सम्भावना नहीं है। इसको रखनेके लिए किसी अलग म्यानकी आवश्यकता नहीं।

पाठक—आपने कहा है कि सत्याग्रह केवल भारतकी विशेष शक्ति है। क्या यहाँ शस्त्रका प्रयोग नहीं हुआ था।

सम्पादक—भारतसे आपका अभिप्राय उन गिने गिनाये राजाओंसे है, पर मेरा अभिप्राय उन जन-समुदायसे है जिन पर उन राजाओंकी स्थिति निर्भर है।

राजा लोग सदा पशु-शक्तिका प्रयोग करेंगे, क्योंकि वे उसीमें उत्पन्न हुए हैं। उनको हुकूमत करनेकी व्याधि लग गई है। पर जिनको उनकी आज्ञाओंका पालन करना है वे शस्त्रका प्रयोग नहीं चाहते। संसारमें इन्हींकी अधिकता है। इनके सामने दोनों शक्तियाँ उपस्थित हैं। यदि इन्होंने पशु-शक्तिका आश्रय लिया तो दोनों गये। पर जहाँ उन्होंने सत्याग्रहका

आश्रय लिया कि उनकी विजय हुई। किसानोंको आज तक न तो किसीने तलवारके बल दबा पाया है, न दबा पावेगा। वे लोग शस्त्रका प्रयोग नहीं जानते, इससे उससे डरते भी नहीं। जो राष्ट्र मृत्युसे भयभीत नहीं होता उसे सर्वोच्च मानना चाहिए। भारतकी जनताने प्रायः सभी अवस्थाओंमें सत्याग्रहका उपयोग किया है। शासकोंने अनुचित व्यवहार किया। जनताने उनका साथ नहीं दिया। यही सत्याग्रह है।

किसी ग्रामके निवासी अनुचित राजाज्ञासे दुखी थे। वे ग्राम छोड़ कर जाने लगे। राजाको जब यह विदित हुआ तब वह घबड़ाया और उनके पास गया। अपने कियेके लिए उसने उनसे क्षमा माँगी और अपनी आज्ञाको उठा लिया। भारतमें ऐसे अनेक उदाहरण वर्तमान हैं। सत्याग्रहके सहारे चलनेवाली जाति ही वास्तविक स्वराज्यकी अधिकारिणी हो सकती है। वहाँ दूसरा शासन नहीं चल सकता।

पाठक—तो शारीरिक बल बढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

सम्पादक—मेरा यह अभिप्राय नहीं है। बिना इसके सत्याग्रही होना भी असम्भव है। शारीरिक दुर्बलताके साथ मानसिक दुर्बलता भी आ जाती है। मानसिक बलके बिना आत्मबल नहीं रह सकता। बाल-विवाह तथा विलास-प्रियताको दूर कर हमें

शारीरिक बल बढ़ाना होगा। दुर्बल मनुष्यको इतना साहस कहाँसे हो सकता है कि वह तोपका सामना कर सके।

पाठक—सत्याग्रही होना सहज नहीं प्रतीत होता। मैं जानना चाहता हूँ कि मनुष्य सत्याग्रही कैसे हो सकता है।

सम्पादक—सत्याग्रही बनना यदि कठिन नहीं तो सरल भी नहीं है। मैंने एक चौदह वर्षके बालकको कट्टर सत्याग्रही बनते देखा है। बीमारोंको मैंने सत्याग्रह व्रत लेते देखा है। साथ ही साथ बड़े बड़े बलवानोंको इसके नामसे डरते देखा है। इन सब बातोंसे अनुभव कर मैंने देखा है कि देशसेवाके लिए सत्याग्रह व्रत धारण करनेमें चार बातें आवश्यक हैं:— (१) सदाचार, (२) दरिद्रता, (३) सत्यपालन, (४) निर्भीकता।

सदाचरणके बिना मानसिक बल नहीं हो सकता। व्यभि-चारी मनुष्य दुर्बल हृदयका होता है। उससे कोई महत्त्वका काम नहीं हो सकता। इसके अनेक प्रमाण वर्तमान हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि विवाहित मनुष्य इस व्रतको ले सकता है या नहीं। शास्त्रानुसार विवाह-सम्बन्ध केवल सन्तानो-त्पत्तिके लिए है। स्त्रीके साथ भी अधिक प्रसंग करना मना है।

पर सत्याग्रहीको नियमित संसर्गको भी त्यागना होगा। उसे सन्ततिकी अभिलाषा त्यागना होगा। इस प्रश्न पर अधिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसके साथ अनेक प्रासंगिक प्रश्न उठ सकते हैं और यहीं पर सबका उत्तर देना कठिन है। पर जो लोग सत्याग्रह-व्रत ग्रहण करना चाहते हैं उन्हें सब बातोंको विधिवत् समझ लेना होगा।

दरिद्रता भी सत्याग्रहका एक अंग है। धनकी लालसा तथा सत्याग्रहमें परस्पर विद्रोह है। जिनके पास द्रव्य है उन्हें फेंक देनेकी शिक्षा नहीं दी जाती, पर उन्हें लापरवाह होना पड़ेगा। पाई पाईको गँवा देनेके लिए तैयार होना पड़ेगा।

सत्याग्रह शब्दके अर्थ ही सत्य पर चलनेके होते हैं। इससे सत्यता इसका प्रधान अंग है। इससे सत्याग्रहीको प्रत्येक भाँति सत्य पालनके लिए कटिबद्ध होना चाहिए। अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि प्राण-रक्षाके लिए झूठ बोलना चाहिए या नहीं। सत्याग्रहीको किसी भी अवस्थामें झूठका नाम नहीं लेना चाहिए।

निर्भीकताके बिना सत्याग्रही एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकता। निडर मनुष्य ही सत्याग्रहके मार्ग पर अटल रह सकते हैं। जिन्हें न घर-द्वारकी परवा है, न मान-आदरका खयाल

है, न धन-दौलतकी चाह है और न मृत्युसे भय है वही सच्चे सत्याग्रही हो सकते हैं।

कष्टसाध्य मान कर इनका त्याग निषिद्ध है। ईश्वरने मनुष्यमें वह शक्ति दी है कि वह सारी आपदाओंका सामना कर सकता है। जिन्हें देश-सेवासे विशेष रुचि नहीं है उनमें भी ये गुण होने चाहिए। योद्धा होना केवल इच्छा मात्रसे नहीं हो सकता। बिना इन चारों गुणोंके वह भी वास्तविक शक्ति नहीं पा सकता। किसी तरहके भयसे प्रेरित होकर ही मनुष्य सच्चाईसे मुँह मोड़ता है। पाशविक बल पर भरोसा रखनेवालेको और कितनी व्यर्थ बातोंकी आवश्यकता होती है जिनसे सत्याग्रही बचा है। केवल निर्भीकताकी कमीसे ही अस्त्र-शस्त्रका अधिक प्रयोग आवश्यक होता है। निर्भय मनुष्यके लिए अस्त्र-शस्त्रादि व्यर्थ हैं।

अठारहवाँ परिच्छेद ।

शिक्षा ।

पाठक——आपने शिक्षाकी आवश्यकता कहीं नहीं बतलाई । प्रत्येक व्यक्तिसे उसकी कमीकी शिकायत सुननेमें आती है। देशमें प्रारम्भिक शिक्षाका प्रबन्ध हो रहा है। महाराज बड़ोदाने अपने राज्यमें इसका प्रचार भी किया है। इस महान् कार्यके लिए सब लोग महाराजाकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं, इसके बारेमें आपका क्या मत हैं।

सम्पादक——यदि हमारी सभ्यता सर्वोच्च है तो इस प्रयासका अधिकतर भाग व्यर्थ है। महाराजा तथा अन्य नेताओंका प्रयास अवश्य सराहनीय है। पर इससे क्या परिणाम निकलेगा वह भी छिपा नहीं रह सकता।

“ शिक्षा ” शब्दसे क्या बोध होता है। इसके माने अक्षरका ज्ञान है। यह भी एक प्रकारका यन्त्र है। इसका

सदुपयोग तथा दुरुपयोग भी हो सकता है । यह हानिकारक तथा गुणकारक दोनों हो सकता है; जैसे एक ही यन्त्रके प्रयोगसे बीमारको चंगा भी किया जा सकता है और उसका प्राण भी हर लिया जा सकता है । प्रत्येक क्षण यही देखनेमें आता है कि अधिकांश मनुष्य इसका दुरुपयोग ही करते हैं, सदुपयोग करनेवाले कम हैं । इससे स्पष्ट है कि लाभके बनिस्बत इससे क्षति अधिक हुई है ।

साधारणतः अक्षरका ज्ञान ही शिक्षा है । बालकोंको पढ़ने-लिखने तथा गणितकी शिक्षा देना प्रारम्भिक शिक्षा है । किसान ईमानदारीसे अपनी जीविका चलाता है । उसे संसारका साधारण ज्ञान है । माता-पिता, भाई-बन्धुके साथ किस तरहसे मिलना चाहिए, वह भली भाँति जानता है । सदाचारके नियमोंको जानता और पालन करता है । केवल वह हस्ताक्षर नहीं कर सकता । उसे शिक्षा देकर क्या लाभ पहुँचाइएगा । क्या उसकी जीवन-चर्य्यामें फर्क आ जायगा । क्या आप उसे अपनी वर्तमान-स्थितिसे असन्तुष्ट कराना चाहते हैं । यदि आपकी यही मन्शा है तो ऐसी शिक्षा वह नहीं चाहता । पश्चिमी हवाके झकोरेमें पड़ कर बिना सोचे बिचारे हम लोग प्रारम्भिक शिक्षाकी धुनमें पड़ गये ।

उच्च शिक्षाहीको लीजिए। मैंने भूगोल, गणित, बीज-गणित, रेखा-गणित इत्यादि पढ़ा है। पर इससे क्या हुआ। मैंने इससे दूसरोंको क्या लाभ पहुँचाया है। मैंने इन सब चीजोंको क्यों पढ़ा। अध्यापक हक्सलेने शिक्षाकी निम्न लिखित परिभाषा दी है।—उदार शिक्षा उसीको मिली है जिसने अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है और जिस प्रकार चाहे उनका उपयोग कर सकता है। जिसकी बुद्धि स्वच्छ, धीर तथा न्यायपथगामी है, जिसके मानसमें प्राकृतिक सत्यताका ज्ञान भरा है, बाह्य इन्द्रियों पर जिसने पूरा आधिपत्य जमा लिया है, बुराइयोंसे आन्तरिक घृणा रखता है और सबकी उचित प्रतिष्ठा करता है ऐसे ही मनुष्यको समुचित शिक्षा मिली है। इसमें तथा प्रकृतिमें सौजन्यता है।

यदि वास्तविक शिक्षाकी उपर्युक्त परिभाषा ठीक मान ली जाय तो जिस प्रकारकी शिक्षा इस समय हम लोगोंको मिलती है, व्यर्थ है। प्रारम्भिक तथा उच्च दोनों प्रकारकी शिक्षायें हम लोगोंके लिए उपयोगी नहीं हैं। इससे न तो हम लोग वास्तविक मनुष्य बन सकते हैं और न भले प्रकार अपना धर्म ही पाल सकते हैं।

पाठक—पर यदि आपको उच्च शिक्षा नहीं मिली होती तो

आप इस तरह हम लोगोंसे बातें कैसे कर सकते; और इन बातोंको बतला सकते।

सम्पादक—आपका प्रश्न यथार्थ है। उत्तरमें मुझे कहना है कि प्रारम्भिक अथवा उच्च शिक्षाके बिना मेरे जीवनमें जरा भी अन्तर न आया होता। और आपको ये बातें बतलानेमें मैं कोई देश-सेवा नहीं कर रहा हूँ। मुझमें देश-सेवाकी इच्छा है, इससे मैं प्राप्त शिक्षाका उपयोग कर रहा हूँ। पर इससे कितनोंको लाभ हो रहा है। केवल तुम्हें। तो उस शिक्षाका कितना थोड़ा उपयोग हुआ। हम तुम दोनोंको अप्राकृतिक शिक्षाकी बू लग गई है। मैं उससे मुक्त हो चुका हूँ और अपने अनुभवका लाभ तुम्हें पहुँचा रहा हूँ। उसीके वर्णनमें मैं तुम्हें शिक्षाकी हीनता दिखला रहा हूँ।

पर मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि अक्षरका ज्ञान बुरा है। मेरे कहनेका तात्पर्य केवल यह है कि हमें उसके पीछे पागल नहीं हो जाना चाहिए। उसे कामधेनु नहीं समझ लेना चाहिए। उससे लाभ भी बहुत हो सकता है। इन्द्रियोंको वश करनेमें हम लोगोंको इससे विशेष सहायता मिली है। ऐसी शिक्षासे हम लोग अवश्य लाभ उठा सकते हैं। यह भी एक प्रकारका आभूषण है। पर इसे सार्वजनिक करनेकी आव-

श्यकता नहीं है। प्राचीन प्रणाली पर ही शिक्षा होना पर्याप्त है। सदाचारकी शिक्षाको प्रधानता देनी चाहिए और इसे ही सार्वजनिक बनाना चाहिए। इसीकी जड़ पुष्ट करनी चाहिए।

पाठक—स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए अँगरेजी शिक्षा भी अनावश्यक है?

सम्पादक—इसके दो उत्तर हो सकते हैं। सर्व-साधारणको अँगरेजी भाषाकी शिक्षा देना, उन्हें वास्तवमें दास बनाना है। मेकालेने जिस शिक्षाका प्रचार किया उससे हम लोग दास बन गये। मेरे कथनका यह तात्पर्य नहीं है कि उन्होंने जान-बूझ कर ऐसा किया, पर उसका परिणाम यही हुआ। क्या यह शोककी बात नहीं है कि स्वराज्यकी चर्चा भी हम लोग विदेशी भाषामें करते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली हम लोगोंमें प्रचलित थी, उसको यूरोपवालों ने घृणित तथा निन्दित बता कर उठा दिया है। वहाँके विद्वज्जन शिक्षा-प्रणालीमें बराबर परिवर्तन किया करते हैं और हम लोग उन्हींकी स्थिर की हुई प्रणालीका अवलम्बन करते हैं। वहाँ प्रत्येक प्रान्त अपनी अपनी उन्नतिमें पड़ा है। वेल्स इङ्गलैण्डका छोटासा भाग है। वहाँके लोग वेल्स भाषाकी उन्नति करना चाहते हैं। प्रधान-मन्त्री लायडजार्ज भी उनका साथ दिये

हुए हैं। पर हम लोगोंकी क्या स्थिति है। हम लोगोंका परस्पर पत्र-व्यवहार भी अशुद्ध अँगरेजी भाषामें होता है। हम लोगोंके विचार भी अँगरेजी भाषा द्वारा ही प्रगट किये जाते हैं। कांग्रेसका सभी कार्य अँगरेजीमें होता है। यहाँके सभी अच्छे अच्छे सम्वादपत्र अँगरेजीमें निकलते हैं। यही दशा कुछ दिन और रही तो समृद्धि हम लोगोंसे और कोसों दूर भागेगी।

अँगरेजी शिक्षासे देश दास बन गया है। दम्भ तथा अत्याचारकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। अँगरेजी पढ़े-लिखे लोग निधड़क लोगोंको ठगते हैं और अकारण भयोत्पादन करते हैं। यदि किसी तरहका लाभ भी जनताको हो रहा है तो वह अधूरा है।

कितनी लज्जाकी बात है कि न्यायालयोंमें हमें अँगरेजी भाषाका प्रयोग करना पड़ता है। हम अँगरेजी पढ़-लिख कर बैरिस्टर हुए कि हमने मातृभाषाको तिलाञ्जलि दी। अब हमें अपनी भाषामें लिखे हुए विषयोंको बतलानेके लिए एक दूसरे व्यक्तिकी आवश्यकता पड़ती है। क्या इससे भी बढ़कर दूसरी मूर्खता हो सकती है, क्या इसे दासताके लक्षण नहीं कह सकते। इसका दोष किसके माथे मढ़ा जाय, अपने या अँगरेजोंके। इसका दोष हम अँगरेजी पढ़े-लिखे शिक्षित लोगों पर है।

यहाँ तक तो मैंने अँगरेजी शिक्षाकी अनावश्यकता बतलाई है। अब मैं थोड़ेमें यह दिखलाऊँगा कि यह आवश्यक क्यों कर है।

सभ्यताका रोग हम लोगोंमें इस तरह व्याप्त है कि अँगरेजी शिक्षाके बिना हमारा काम ही नहीं चल सकता। जिन लोगोंको अँगरेजी शिक्षा मिली है वे इसका सदुपयोग कर सकते हैं। अँगरेजोंके साथ पत्र-व्यवहार करनेके लिए, अपने भिन्न भिन्न प्रादेशिक भाइयोंके साथ पत्र-व्यवहार करनेके लिए, अँगरेजोंको अपनी सभ्यतासे कितनी घृणा हो गई है इस बातको जाननेके लिए, अँगरेजी भाषा आवश्यक है। अँगरेजी पढ़े-लिखे लोगोंको चाहिए कि अपनी सन्ततिको मातृभाषाका ज्ञान दें, अन्य देशी भाषाओंकी शिक्षा दें, युवा होने पर वे लोग अँगरेजी भी पढ़ लें, पर उसे आवश्यक या अपना अंग नहीं बनाना चाहिए। इतनी अँगरेजी पढ़नेमें भी इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वारा कौन कौन बातें जाननी होंगी। यदि विचार कर देखिए तो आपको विदित होगा कि अँगरेजी डिग्रीकी तरफसे यदि हमलोग मुँह मोड़ लें तो हमारी सरकार भी चौकन्नी होने लगेगी।

पाठक—हम लोगोंको कैसी शिक्षा मिलनी चाहिए?

सम्पादक—यहाँ तक इसी बात पर विचार होता आया है। इसकी थोड़ी चर्चा और करनी चाहिए। हमको प्रत्येक भारतीय

भाषाकी उन्नति करनी चाहिए। देशी भाषा द्वारा किन किन विषयोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, यहाँ बतलाना आवश्यक नहीं है। उपयोगी अँगरेजी पुस्तकोंका देशी भाषाओंमें अनुवाद होना चाहिए। विविध विज्ञानके अध्ययनकी अभिलाषा त्याग देनी चाहिए। धार्मिक शिक्षाको उच्चतम स्थान देना चाहिए। हिन्दीका ज्ञान सबको प्राप्त करना चाहिए। इसके अतिरिक्त हिन्दूको संस्कृत, मुसलमानको अरबी और फारसीको पारसी भाषा जाननी चाहिए। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त भाषाओंका भी परस्पर प्रचार होना चाहिए। राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिए, चाहे वह देवनागरी या पारसी अक्षरोंमें लिखी जाय। हिन्दू, मुसल्मानोंकी घनिष्टताके लिए दोनों वर्णमालाओंका ज्ञान आवश्यक है। यदि इतना हो सके तो अँगरेजी भाषा बातकी बातमें यहाँसे बिदा हो सकती है। अपनेको तथा राष्ट्रको दासतासे मुक्त करनेके लिए यह आवश्यक है।

पाठक—धार्मिक शिक्षाका प्रश्न बिकट है।

सम्पादक—पर धार्मिक शिक्षाके बिना काम नहीं चल सकता। यह देवभूमि है। नास्तिकताका प्रचार यहाँ नहीं हो सकता। धार्मिक शिक्षाका प्रश्न मुझे भी चक्करमें डाल देता है।

हम लोगोंके धार्मिक शिक्षक दम्भी और स्वार्थी हैं। धर्मकी कुञ्जी हमारे यहाँ ब्राह्मणों, मुल्लों तथा दस्तूरोंके हाथ है। हमें उन्हें समझाना होगा। यदि वे नहीं समझेंगे तो अँगरेजी शिक्षासे प्राप्त शक्तिको इसी काममें लगाना होगा। यह साध्य है। केवल हम लोगोंका बाह्य भाग खराब हो गया है। उसीको ठीक करना है। ये भाग गिने गिनाये हैं। इनका सुधार सहजमें हो सकता है। अपनी प्राचीन सभ्यता ग्रहण करना ही भारतके लिए श्रेयस्कर है। उसमें भी उन्नति, अवनति, सुधार होते रहेंगे। पर यदि एकत्र प्रयत्नसे हम लोग पश्चिमी सभ्यताको उखाड़ कर दूर फेंक दें तो सब काम होता रहेगा।

उन्नीसवाँ परिच्छेद ।



मशीनरी या यन्त्र ।



पाठक—जब पश्चिमी सभ्यताको आप यहाँसे उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं तो आप मशीनों (यन्त्रों) को भी अनावश्यक समझते हैं ।

सम्पादक—इस प्रश्नको उठा कर आपने मेरे दिलमें कड़ी चोट पहुँचाई । स्व० रमेशचंद्रदत्तके ' भारतके आर्थिक इतिहासका दिग्दर्शन ' पढ़ कर मैंने खूब रोया था । आज उसीका स्मरण कर मेरा कलेजा काँप उठा । यन्त्रोंहीने भारतको गारत किया । माञ्चेष्टरने जो क्षति हम लोगोंको पहुँचाई है वह कथनके बाहर है । माञ्चेष्टरकी करतूतसे ही भारतकी कारीगरीका लोप हुआ ।

पर माञ्चेष्टरको व्यर्थ दोष क्यों दिया जाय । सारा दोष हम लोगोंका है । माञ्चेष्टरके बने कपड़े हम लोग पहनने लगे, इसीसे वे लोग उन्हें बना-बना कर यहाँ भेजने लगे । जिस समय

बङ्गालने बहिष्कारकी घोषणा की थी, मैं हृदयसे प्रसन्न हुआ था। बङ्गालमें कपड़ेके कारखाने नहीं रह गये, इसी लिए वहाँ कारीगरोंका प्रचार हो सका है। बंगालने बम्बईके मिलवालोंको उत्साहित किया है। यदि बंगाल सभी तरहसे मशीनके बने कपड़ोंका बहिष्कार किये होता तो बड़ा भारी काम हुआ होता।

मशीनरी अब यूरोपका भी सर्वनाश कर रही है। आधुनिक सभ्यताका विशिष्ट चिह्न यही यन्त्र हैं। इन्हें पापका बोझ, समझना चाहिए।

बम्बई-मिलोंके कर्मचारी (कुली) गुलामोंसे भी बत्तर हो गये हैं। मिलोंमें काम करनेवाली स्त्रियोंकी दशा अति शोचनीय है। जिस समय मिलें नहीं थीं तो क्या ये स्त्रियाँ भूखों मरती थीं। यदि मशीनोंकी इसी तरह बढ़ती होती रही तो भारतसे सुख-शान्ति सदाके लिए कूच कर जायगी। इससे अच्छा तो यही है कि हम लोग जन्मभर माञ्चेष्टरके बने कपड़े ही पहनते रहें। माञ्चेष्टरके बने कपड़ोंको पहननेसे केवल द्रव्यकी हानि होगी, पर भारतको माञ्चेष्टर बनानेमें यहाँका आचरण लुप्त हो जायगा और इसका उदाहरण मैं वर्तमान मिलोंको देता हूँ। विदेशियोंकी भाँति यहाँ भी धनी होनेके लिए अनेक तरहके अत्याचार किये जायँगे। दरिद्र भारत तो कभी न कभी स्वतन्त्र

किया भी जा सकेगा, पर आचरण-भ्रष्ट भारत कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। आपको यह मानना पड़ेगा कि रुपयेवाले ही ब्रिटिश शासनको स्थिर रखना चाहते हैं। क्योंकि इसीमें वे अपनी भलाई समझते हैं। द्रव्य मनुष्यको लाचार बना देता है। दूसरा भय व्यभिचारका है। इन दोनोंको विष समझिए। सर्प-दंशसे भी इनको भयंकर समझिए। सर्पदंश तो केवल शरीरका नाश करके रह जाता है, पर उनसे तो शरीर तथा आत्मा दोनोंका नाश हो जाता है। इस लिए मिलोंकी बढ़तीका खयाल कर प्रसन्न होना ठीक नहीं है।

पाठक—तो फिर मिलोंको बन्द कर देना चाहिए।

सम्पादक—जो बात एक बार हो गई उसे मिटाना कठिन है। किसी कार्यका अनारम्भ ही श्रेष्ठ है। मिलवालोंकी मैं निंदा नहीं करता। केवल उनकी दशा पर तर्स आता है। मिलोंको बन्द करना तो असम्भव है। पर उनके मालिकोंसे प्रार्थना करना चाहिए कि अब वे उन्हें बढ़ावे नहीं। यदि वे धीरे धीरे अपने कामको कम करते जायँ तो उनकी और भी कृपा होगी। वे लोग घर घर करगह खोलवा कर कपड़े बिनवा सकते हैं। चाहे मिलवाले यह न भी करें तो भी जनता मिलके बने कपड़ोंको त्याग सकती है।

पाठक—आप केवल कलके बने कपड़ोंकी बातें कह रहे हैं, पर कलकी बनी तो अनेक चीजें हैं। उन चीजोंको या तो हम लोग बाहरसे मँगावें या उनके बनानेके लिए मशीनें मँगावें।

सम्पादक—जब हम लोगोंके देवता ही विदेशसे बन कर आते हैं तो सुई, दियासलाई आदिकी कौन कहे। मैं एक बात पूछता हूँ। इन वस्तुओंके प्रचारके पूर्व भारतका काम कैसे चलता था। जैसे तब चलता था वैसे अब भी चल सकता है। जब तक हम लोग बिना कलके आलपिन नहीं बना सकते तब तक हम लोग उसका प्रयोग ही नहीं करेंगे। शीशे इत्यादिकी वस्तुओंका प्रयोग ही हम लोग छोड़ देंगे। बत्ती हम लोग पहलेकी तरह रुईकी बना लेंगे और मिट्टीकी दिया जलावेंगे। इससे आशातीत लाभ होगा। एक तो हम लोगोंकी आँखें अच्छी रहेंगी, दूसरे रुपया बचेगा, तीसरे स्वदेशीका प्रचार होगा और इसीसे स्वराज्य मिलेगा।

सभी लोग एकदमसे इस कामको नहीं करने लग जायँगे और न सब लोग एकदम मिलके बने कपड़े पहनना छोड़ देंगे। पर यदि हम लोगोंका विचार दृढ़ है तो धीरे धीरे उसकी सिद्धि हो जायगी। देखा-देखी सभी वही करने लग जायँगे। सर्व-साधारण तो नेता लोगोंका अनुकरण करनेका प्रयास करते हैं।

यह बात बहुत कठिन भी नहीं है । दूसरोंको अपने पक्षमें लानेके लिए रुके रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जो लोग इस पर नहीं चलेंगे उन्हें क्षति उठाना पड़ेगा और जो लोग इसके लाभको जान कर भी इसका अवलम्बन नहीं करेंगे वे बुजदिल कहलावेंगे ।

पाठक—ट्राम्बे तथा बिजलीके बारेमें आपका क्या मत है।

सम्पादक—यदि रेलके बिना हमारा काम चल सकता है तो ट्राम्बेकी हमें विशेष आवश्यकता नहीं। कल-कारखानोंको साँपका बिल ही समझना चाहिए। इसके साथ अनेक आपदायें हैं। कल-कारखाने बड़े बड़े शहरोंहीमें रहते हैं । जहाँ बड़े बड़े शहर होंगे वहाँ रेलगाड़ी तथा ट्राम्बे आदिका रहना आवश्यक है। विलायतके ग्रामोंमें ये बातें नहीं हैं । जहाँ इन बातोंकी वृद्धि हुई है जनताका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा है। मुझे एक यूरोपके ग्रामका अनुभव है । उसमें रुपयेकी कमीके कारण ट्राम्बे, वकील, डाक्टर सभीकी आमदनीमें कमी पड़ने लगी, परिणाम यह हुआ कि सब ही अच्छे स्वस्थ दिखलाई पड़ने लगे । इनके बारेमें एक भी अच्छी बात मेरी स्मरणमें नहीं आती। इनकी बुराइयोंकी गाथासे मोटी मोटी जिल्दें तैयार हो सकती हैं।

पाठक—जो कुछ आप कह रहे हैं यन्त्रोंमें ही छापा जायगा। यह अच्छा है या बुरा।

सम्पादक—नीतिमें कहा है विष विषको मारता है। उपर्युक्त कथन भी उसीका उदाहरण है। पर इससे यन्त्रोंके पक्षका समर्थन नहीं हो सकता। यन्त्रोंसे केवल उन्हींको लाभ हो सकता है जो उसके नशेमें पड़ गये हैं। यन्त्रोंका प्रयोग हमेशा हानिकारक है। इस बातको लक्ष्यमें रख कर ही हम लोग कुछ कर सकेंगे। एकदम अभिष्ट सिद्धिके लिए कोई मार्ग नहीं बना है। यदि यन्त्रोंको भाग्योदयका कारण न मान कर उन्हें हानिकारक समझा जाय तो किसी न किसी दिन उनका अस्तित्व भी नष्ट अवश्य हो जायगा।

बीसवाँ परिच्छेद।

परिशिष्ट।

पाठक—मुझे विदित होता है कि आप एक तीसरा दल बनावेंगे। आपके मत न तो नरम दलवालोंसे मिलते हैं और न गरमदलवालोंसे मिलते हैं।

सम्पादक—यहाँ पर भी आप भ्रममें हैं। मैं कोई दल नहीं बनाना चाहता। सब एक मतके नहीं हो सकते। नरम दल-वालोंहीमें मत भेद होगा। जब सबका उद्देश्य देश-सेवा है तो दलबन्दीकी क्या आवश्यकता है। मैं तो दोनोंके साथ हूँ, जहाँ मत-भेद होगा मैं अपना मत प्रगट कर दूँगा।

पाठक—आप दोनों दलोंसे क्या कहिएगा।

सम्पादक—गरमदलवालोंसे मेरा वक्तव्य होगा कि आप भारतके लिए स्वराज्य चाहते हैं। वह माँगनेसे नहीं मिल सकता। सबको उसके पानेका प्रयत्न करना होगा। जो कुछ

दूसरे हमें दिलावेंगे वह स्वराज्य नहीं होगा, बल्कि विराज्य होगा। मैंने स्वराज्यके मूलतत्त्वोंका वर्णन किया है। उसकी प्राप्ति शस्त्र-बलसे नहीं हो सकती। भारतकी स्थितिके लिए पाशविक शक्ति अनुकूल नहीं है। इस लिए आत्मबल पर ही भरोसा रखना होगा। अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिए खून-खराबीकी हमें कहीं भी जरूरत नहीं पड़ेगी।

नरमदलवालोंसे मेरा वक्तव्य है:—केवल मिन्नतसे काम नहीं चल सकता। इससे केवल दुर्बलता प्रगट होती है। ब्रिटिश शासनको अनिवार्य मानना नास्तिकता है, क्योंकि ईश्वरके अतिरिक्त इस संसारमें कोई वस्तु अनिवार्य नहीं है। और ब्रिटिश शासनकी अनिवार्यता पर जोर देना अँगरेजोंमें दम्भ लाना है।

अँगरेजोंके चले जानेसे भारत दीन नहीं हो सकता। यह सम्भव है कि दबावसे जो लोग दबे हैं उनके चले जानेसे उप-द्रव मचाने लगेंगे, पर दिलका गुब्बार निकाल देना ही अच्छा है, उसे दबानेसे कोई लाभ नहीं, यदि शान्तिके पूर्व युद्ध होना अनिवार्य है तो लड़ लेना ही अच्छा है। दुर्बलकी रक्षाके लिए तीसरे दलकी आवश्यकता नहीं है। इसीने तो हम लोगोंको कमजोर बना दिया। इस तरहकी रक्षासे दुर्बल दुर्बल ही होता जायगा। जब तक इन बातोंका हम लोगोंको पूरा ज्ञान नहीं

होगा, स्वराज्य मिलना कठिन है। किसी अँगरेज पादरीका मत है कि विदेशी शासनसे स्थापित शान्तिसे स्वराज्यमें अराजकता कहीं अच्छी है।

यदि उपर्युक्त विचारसे काम किया जाय तो मत-भेद उठ जायगा और दोनों दल एक हो जायँगे। परस्पर अविश्वासका कोई कारण नहीं है।

पाठक—अँगरेजोंसे आप क्या कहिएगा।

सम्पादक—उनसे मेरा यह वक्तव्य है—"आपको हम अपना शासक मानते हैं। इस बातकी बहस हम आपसे नहीं करना चाहते कि भारत पर आपने बलसे अधिकार जमाया या हम लोगोंकी रायसे। आप भले ही यहाँ रहें, पर आपको कर्मचारियोंकी भाँति रहना पड़ेगा। आप मनमाना कोई काम नहीं कर सकते। हम लोगोंकी इच्छाका आपको अनुसरण करना पड़ेगा। जहाँ तक लूट सके इसे आपने लूटा, अब आप इस पर हाथ नहीं लगा सकते। आपका काम भारतकी रक्षा होगा। व्यापारिक लाभका खयाल भी छोड़ देना होगा। आपकी सभ्यताको हम लोग हबशीयन समझते हैं। पूर्वीय सभ्यता आपकी सभ्यतासे कहीं उच्च कोटिकी है। हमारे धर्मके प्रतिकूल आप कोई काम नहीं कर सकते। भारतमें रह कर आपका कर्तव्य

है कि हिन्दू तथा मुसलमानोंको सन्तुष्ट रखनेके लिए आप गौ तथा सूअरका मांस खाना छोड़ दें। आज तक बेकसीकी हालतमें हम लोग चुपचाप पड़े रहे, इससे यह मत समझिएगा कि अपने इन कर्तव्योंसे आपने मेरी अन्तरात्माको पीड़ा नहीं दी है। आपकी शिक्षा-प्रणाली तथा न्यायालयोंको हम लोग वाहियात समझते हैं। हम लोग अपनी प्राचीन प्रणाली चलाना चाहते हैं। भारतकी राष्ट्रभाषा अँगरेजी नहीं, बल्कि हिन्दी है। आपको हिन्दी सीखना चाहिए। आपको इसी भाषामें कामकाज करना चाहिए।"

आप फौज तथा रेलोंमें मनमाना द्रव्य नहीं लगा सकते। दोनोंमेंसे एककी भी आवश्यकता हमें नहीं है। कदाचित् आपको रूसका भय हो, पर हम लोग किसीकी परवा नहीं करते। जिस समय वे लोग आवेंगे हम देख लेंगे। विदेशी कपड़ोंको हम लोग नहीं चाहते। अबसे हम लोग स्वदेशी वस्त्रका ही प्रयोग करेंगे। आपको माञ्चेष्टरका खयाल छोड़ना पड़ेगा।"

"उपर्युक्त बातें उन्मादमें नहीं कही जा रही हैं। हम लोग जानते हैं कि आपके पास बड़ी फौज है, बेड़ा है। आपसे लड़ कर हम लोग पार नहीं पा सकते। पर इससे क्या,

यदि आपको हम लोगोंकी बातें स्वीकार नहीं हैं तो हम लोग आपसे कुट्टी कर लेते हैं। आप हम लोगों पर मोछे बरसवाइए, बोटी बोटी करके धज्जियाँ उड़वा डालिए। पर हम लोग एक नहीं माननेवाले हैं। आपसे मुँह मोड़ लेंगे। आप जानते ही हैं कि हम लोगोंकी सहायताके बिना आप हिल तक नहीं सकते।"

"शक्तिके मदमें चूर हुए आप लोग कदाचित् इसे प्रलाप समझें; आपकी मोहनिद्रा शीघ्र नहीं टूट सके। पर यदि हम लोगोंमें मनुष्यत्व है तो आपको शीघ्र ही विदित हो जायगा कि इस मोहसे क्या हानि हो सकती है और दूसरोंके माथे खेलनेका क्या फल होता है। आपका हृदय धार्मिक भावोंसे भरा है। यह देश धर्मक्षेत्र है। चाहे किसी कारणसे क्यों न हुआ हो, हम लोग चाहें तो इस परस्परके सम्बन्धसे दोनोंका लाभ हो सकता है।"

"जो अँगरेज भारतमें आ गये है वे सच्चे अँगरेज नहीं हैं, और हम भारतवासियोंमें आधीसे अधिक अँगरेजियत आ गई है, इससे हम लोग भी सच्चे भारतीय नहीं कहे जा सकते। यदि अँगरेज जातिको आपकी करतूतोंका सच्चा पता चल जाय तो उसे घृणा तथा लज्जा होगी। साधारण हिन्दुस्तानियोंसे आपका वास्ता ही नहीं पड़ता। यदि पश्चिमी सभ्यताके

नशेको दूर कर आप बाइबिलमें ढूँढ़िए तो आपको विदित होगा कि हम लोगोंकी माँग यथार्थ है। केवल लोगोंकी माँग पूरी करने पर ही आपका यहाँ रहना हो सकता है। इसमें दोनोंका लाभ है। और हम लोग मिल कर संसारका भी बहुत काम कर सकते हैं। पर सबका मूल कारण हम लोगोंके सम्बन्धकी स्थिरता है।

पाठक—जातिके प्रति आपका क्या वक्तव्य है।

सम्पादक—जाति कहाँ है।

पाठक—वर्तमान जातिसे ही मेरा अभिप्राय है।

सम्पादक—इन लोगोंसे मेरा कहना है—"भारतके सच्चे सपूत वही हैं जो निडर होकर अपना स्वत्व अँगरेजोंसे माँग सकते हैं और यह उनके ही सामर्थ्यमें है जो इस बातको मानते हैं कि पश्चिमी सभ्यता दोष-पूर्ण है। यह स्थायी नहीं रह सकती। इस तरहकी अनेक सभ्यताएँ आईं और चली गईं। यह ज्ञान उन्हींको हो सकता है जो आत्मबलके मर्मको जानकर पाशविक शक्तिके सामने सिर नहीं झुकावेंगे। यह उन्हींसे हो सकता है जो इन वर्तमान बुराइयोंमें पड़ कर इनके असली मर्मको जान गये हैं।

यदि ऐसा एक भी भारतीय आत्मा होगा तो उसकी बातको लाचार हो कर अँगरेजोंको मानना ही पड़ेगा।

इनको माँग नहीं कहना चाहिए। ये हम लोगोंके अन्तः-करणके भावके सूचक हैं। माँगनेसे कुछ भी नहीं मिल सकता। अपने स्वत्वको आप लेना होगा और उसमें सफलताके लिए आवश्यक बल चाहिए। यह शक्ति उन्हींमें है जो

१—अँगरेजी भाषाके दास नहीं हैं।

२—यदि वकील हैं तो वकालत छोड़ करगह पर काम करें।

३—भारतीय जनता तथा अँगरेजोंको दशाका बोध करावें।

४—परस्पर कलह रोकेंगे, न्यायालयसे मुँह मोड़ लेंगे और दूसरोंको भी यही सिखलावेंगे।

५—न्यायाधीश होना भी स्वीकार करेंगे।

६—यदि डाक्टर हैं तो शरीर-रक्षाका कार्य त्याग कर आत्माकी रक्षाका प्रबन्ध करेंगे।

७—धनी होकर निडर रहेंगे। स्वच्छन्दतासे अपने विचारोंको दूसरों पर प्रगट कर सकेंगे।

८—अपने धनका उपयोग देशी कारीगरीके उत्थानमें करेंगे।

पाठक—इन बातोंको सब कहाँ तक कर सकेंगे।

सम्पादक—यही भूल है। किसीको किसीकी बाट जोहनेकी आवश्यकता नहीं है। सबको अपना अपना काम करना चाहिए। बस सब हो जायगा। इन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

१—आत्मसंयम ही वास्तविक स्वराज्य है।

२—आत्मबल या सत्याग्रह उसका एक मात्र मार्ग है।

३—सत्याग्रहकी सफलताके लिए स्वदेशी बननेकी आवश्यकता है।

४—यह सब हम इस लिए नहीं कहते कि हम अँगरेजोंसे घृणा करते हैं, बल्कि हमारा यह कर्तव्य है। नमक परसे महसूल उठ जाना चाहिए, उच्च पदों पर हिन्दुस्तानियोंको नियुक्त करना चाहिए, अँगरेजी सेनाको यहाँसे हटा लेना चाहिए, हम लोगोंको विलायती कपड़े नहीं पहनना चाहिए, अँगरेजी भाषा नहीं बोलना चाहिए तथा विदेशी कला-कौशलकी परवा नहीं करना चाहिए। मैं इन बातों पर इतना जोर केवल इस लिए दे रहा हूँ कि इनसे भारतकी वास्तविक क्षति है। अँगरेजोंसे मुझे कोई वैमनस्य नहीं है। उनकी सभ्यता अवश्य निन्दनीय है।

मेरी समझमें अब तक हम लोग 'स्वराज्य' शब्दका दुरुपयोग करते आये हैं। अपनी बुद्धिके अनुसार मैंने उसके वास्तविक स्वरूपको दिखलानेका प्रयत्न किया है। और आजसे मैं उसीकी प्राप्तिका व्रत लेता हूँ।

शम्।

हिन्दी-गौरव-ग्रन्थमाला ।

इस उत्कृष्ट ग्रंथमालाके स्थायी ग्राहकोंको नीचे लिखी इसकी सब पुस्तकें पौनी कीमतमें दी जाती हैं ।

१ सफल-गृहस्थ । इसमें मानसिक शान्तिके उपाय, कार्य-कुशलता, कुटुम्ब-शासन, हृदयकी गंभीरता, संयम आदि पर सुंदर विवेचन है । नया संस्करण । मू० ।॥)

२ आरोग्य-दिग्दर्शन । मूल-लेखक महात्मा गाँधी । पुस्तक बड़ी उपयोगी है । पुस्तकमें हवा, पानी, खुराक, जल-चिकित्सा, मिट्टीके उपचार, छूतके रोग, बच्चोंकी सँभाल, सर्प-बिच्छू आदिका काटना, डूबना या जलजाना आदि अनेक विषयों पर विवेचन है । तीसरा संस्करण । मू० ।=)

३ कांग्रेसके पिता मि० ह्यूम । कांग्रेसके जन्मदाता, भारतमें राष्ट्रीय भावोंके उत्पादक, मनुष्य-जातिके परम हितैषी, स्वार्थ-त्यागी मि० ह्यूमका यह जीवन-चरित्र प्रत्येक देशभक्तके पढ़ने योग्य है । मूल्य बारह आने ।

४ जीवनके महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश । प्रत्येक युवकके पढ़ने लायक चरित्र-संगठनमें उपयोगी पुस्तक । नया संस्करण मू० ॥-)

५ विवेकानन्द (नाटक) । स्वामी विवेकानन्दने अमेरिकामें जो हिन्दूधर्मका प्रचार किया, उसका इसमें सुन्दर चित्र खींचा गया है । देश-भक्तिकी पवित्र भावनाओंसे यह नाटक भरा हुआ है । मू० १) रु०

६ स्वदेशाभिमान । इसमें कितने ही ऐसे विदेशी रत्न-रत्नोंकी खास खास घटनाओंका उल्लेख है, जिन्होंने अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया था । नया संस्करण । मूल्य ।-)

७ स्वराज्यकी योग्यता । स्वराज्यके विरुद्ध जो आपत्तियाँ उठाई जाती हैं उनका इसमें बड़ी उत्तमताके साथ खण्डन कर इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि भारतको स्वराज्य मिलना ही चाहिए । मू० १।) रु०

८ एकाग्रता और दिव्यशक्ति । इसमें दिव्यशक्ति—आरोग्य, आनन्द, शक्ति और सफलता—की प्राप्तिके सरल उपाय बतलाये गये हैं । मूल्य १), सजि० १।=)

९ जीवन और श्रम । परिश्रम करनेसे घबड़ानेवाले और परिश्रम करनेको बुरा समझनेवाले भारतके लिए संजीवनी शक्तिकी दाता । श्रम कितने महत्त्वकी वस्तु है, यह इसे पढ़नेसे मालूम होगा । मूल्य १॥), स० १॥।=)

१० प्रफुल्ल (नाटक) । हमारे घरों और समाजमें जो फूट, स्वार्थ, मुकदमेबाजी, ईर्षा-द्वेष आदि अनेक दोषोंने घुस कर उन्हें नरक धाम बना दिया है उनके संशोधनके लिए महाकवि गिरिश बाबूके उत्कृष्ट सामाजिक नाटकोंका घर घरमें प्रचार होना चाहिए । मूल्य १=) सजि० १॥) रु०

११ लक्ष्मीबाई । झाँसीकी रानीकी यह जीवनी बड़ी खोजके साथ लिखी गई है । सरस्वतीके सम्पादकका कहना है कि " केवल इसी पुस्तकके लिए मराठी सीखनी चाहिए । " मूल्य १) रु०, सजिल्दका १॥=)

१२ पृथ्वीराज (नाटक) । भारतके सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चोहानने गजनीके दुर्दमनीय मुगल-सम्राटको पराजित कर पुण्यभूमि भारतकी रक्षाके लिए जो अपूर्व आत्म-बलिदान किया था उसी वीरका वीररस-प्रधान चरित्र इसमें चित्रित किया गया है । मू० ॥।)

१३ महात्मा गाँधी । छः सुन्दर चित्रों-सहित । हिंदी-साहित्यमें यह बहुत बड़ी और अपूर्व पुस्तक है । इसके पहले खण्डमें महात्माजीकी १३२ पृष्ठोंमें विस्तृत जीवनी है । दूसरे खण्डमें महात्माजीके लगभग ८० महत्त्वपूर्ण व्याख्यानों और लेखोंका संग्रह है; और उनमें ऐसे व्याख्यान बहुत हैं जिन्हें हिन्दी-संसारने बहुत ही कम पढ़ा है । पृष्ठ ४७५ । मू० ३) रु० ।

१४ वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति ? भारतीय आदर्शको गिरानेवाले विधवा-विवाहसे होनेवाली दुर्दशाका बड़ा ही मार्मिक और हृदयको हिला देनेवाला चित्र इसमें खींचा गया है । मू० ॥।≈), सजि० १।-)

१५ आत्मविद्या । नये ढंगसे लिखा हुआ वेदान्त विषयका यह अपूर्व ग्रंथ है । इसमें संक्षिप्तमें पर बड़ी सुन्दरताके साथ वेदान्तके महान् ग्रंथ योगवशिष्ठका सार दे दिया गया है । इसका मराठीसे अनुवाद श्रीयुत पं० माधवराव सप्रे बी० ए० ने किया है । मू० २) रु०, कपड़ेकी जि० २॥)रु० ।

१६ सम्राट् अशोक । यह एक उत्कृष्ट और भाव-पूर्ण उपन्यास है । इसमें अशोकका विश्वप्रेम, महात्मा मोग्गली-पुत्र तिष्य और श्रेष्ठी उपगुप्तकी परहित-साधनकी समुज्ज्वल भावनाएँ, कुमार वीताशोकका भ्रातृप्रेम, प्रमिलाका कारस्थान और इन्दिरा तथा जितेन्द्रका स्वर्गीय प्रेम आदिकी एकसे एक बढ़कर सुधास्यन्दिनी, रसभीनी कहानी पढ़कर को आप मुग्ध हो जायँगे । मूल्य २॥।) रु० कपड़ेकी जि० ३।) रु० ।

१७ बलिदान । महाकवि गिरिशचंद्र घोषके एक उत्कृष्ट सामाजिक नाटकका अनुवाद । इसमें वर-विक्रयसे होनेवाली दुर्दशाका चित्र बड़ी कारुणिक भाषामें खींचा गया है, जिसे पढ़ कर आप रो उठेंगे । देश और जातियोंकी हालतसे आपका हृदय तलमला उठेगा । सारे हिन्दी-साहित्यमें शायद ही इसके जोड़का कोई नाटक हो । उन लोगोंको भी यह नाटक अवश्य पढ़ना चाहिए जिनमें कन्या-विक्रय जारी है । मू० सादी जि० १।) रु० कपड़ेकी जि० १॥।)रु०

१८ हिन्दूजातिका स्वातन्त्र्य-प्रेम । हिन्दी-साहित्यमें स्वतंत्र लिखी हुई एक उत्कृष्ट पुस्तक । इसमें स्वतंत्रता-प्राप्तिके लिए बलिदान होनेवाली हिन्दूजातिकी वीरताका ज्वलंत चित्र खींचा गया है, जिसे पढ़ कर आपका रोमरोम फड़क उठेगा । भाषा बड़ी ओजस्वी है । मू० १), सजिल्द १॥) ।

१९ चाँदबीबी—इसमें बीजापुरकी वीरनारी बेगम चाँद-सुलतानाकी अद्भुत वीरता और क्षमता, देशके उछरते हुए बालकोंका जन्मभूमिके लिए अपूर्व बलिदान और मराठे वीर रघुजीकी हृदयको हिला देनेवाली स्वामी भक्ति आदिकी वीर और करुण कहानीको पढ़ कर आपका हृदय भर आयेगा । मूल्य १।) रु० पक्की जिल्दके १॥।) रु०

२० भारतमें दुर्भिक्ष—ले० पं० गणेशदत्त शर्मा । कई पुस्तकोंके आधार पर लिखा गया स्वतंत्र ग्रंथ । भारतमें जब अँगरेजोंका राज्य स्थापित नहीं हुआ था तब देशमें अन्न, वस्त्र, घी, दूध आदि सभी वस्तुएँ खूब सस्ती—पानीके भाव—थीं; देशमें क्या गरीब, क्या धनी सभी सुखी थे; दुर्भिक्ष, महामारी आदिके उपद्रव तब कभी कहीं नाम मात्रको हो जाय

करते थे और जबसे अँगरेजोंका प्रभुत्व स्थापित हुआ तबसे देशके सब व्यापार-धन्धे विदेशियोंके हाथ चले गये; देशकी कारीगरी, कला-कौशल बड़ी क्रूरतासे बरबार कर दिये गये; अन्न, वस्त्र, दूध, घी, आदिकी अभूतपूर्व मँहगीने गरीब भारतीयोंको तबाह कर दिया; देशकी छाती पर दुर्भिक्ष-दानव लोमहर्षण तांडव नृत्य कर रहा है; जिस भारतमें ७५० वर्षोंमें केवल १८ अकाल पड़े—सो भी देशव्यापी नहीं, प्रान्तीय—उसीमें सिर्फ सौ वर्षोंमें ३१ दारुण अकाल पड़े और उनमें सवा तीन करोड़ मनुष्य काल-कवलित हुए ! देशकी इस रोमाञ्चकारी दुर्दशाको पढ़ कर पत्थरके जैसा हृदय भी दहल उठेगा और सहानुभूतिकी आहोंके साथ आँखोंसे आँसू गिरने लगेंगे। मू० १॥।) रु० कपड़ेकी पक्की जिल्दके २।) रु०

११ स्वाधीन भारत—ले० महात्मा गाँधी। भारत पराधीन है—गुलामीकी बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ है। वह स्वाधीन कैसे हो सकता है, इसी विषय पर सत्य, दृढ़ता और निर्भीकतासे महात्माजीने इस दिव्य पुस्तकमें विवेचन किया है। संक्षिप्तमें इस पुस्तकको महात्माजीके सारे जीवनका अनुभव समझिए। इस पुस्तकका घर-घरमें प्रचार होना चाहिए। इसी विचारसे इसका मूल्य भी कम रक्खा गया है। मूल्य सिर्फ बारह आने।

१२ महाराजा रणजीतसिंह—ले० पं० नन्दकुमारदेव शर्मा। कोई २५–३० ग्रंथोंके आधार पर लिखा गया पंजाब-केसरी रणजीतसिंहका स्वतंत्र और महत्त्व-पूर्ण जीवनचरित। इसे पंजाबका सौ वर्षोंका इतिहास समझिए। पंजाब जब बड़ी बिकट स्थितिमें था और चारों ओर खून-खराबी और मारकाटका बाजार गर्म था तब अपनी लोकोत्तर वीरता और बुद्धिसे थोड़े ही वर्षोंमें पंजाब-केसरी सारे पंजाब पर विजय करके उसे एकाधिपत्य शासनके छत्र तले ले आये। उनमें अद्भुत संगठन शक्ति और शासन-क्षमता थी। प्रत्येक देशाभिमानीको पंजाब-केसरीकी यह वीररस-पूर्ण जीवनी पढ़नी चाहिए। मू० १॥।) रु० सजि० २।) रु०

मैनेजर—**गाँधी हिन्दी-पुस्तक भंडार, कालबादेवी—बम्बई।**